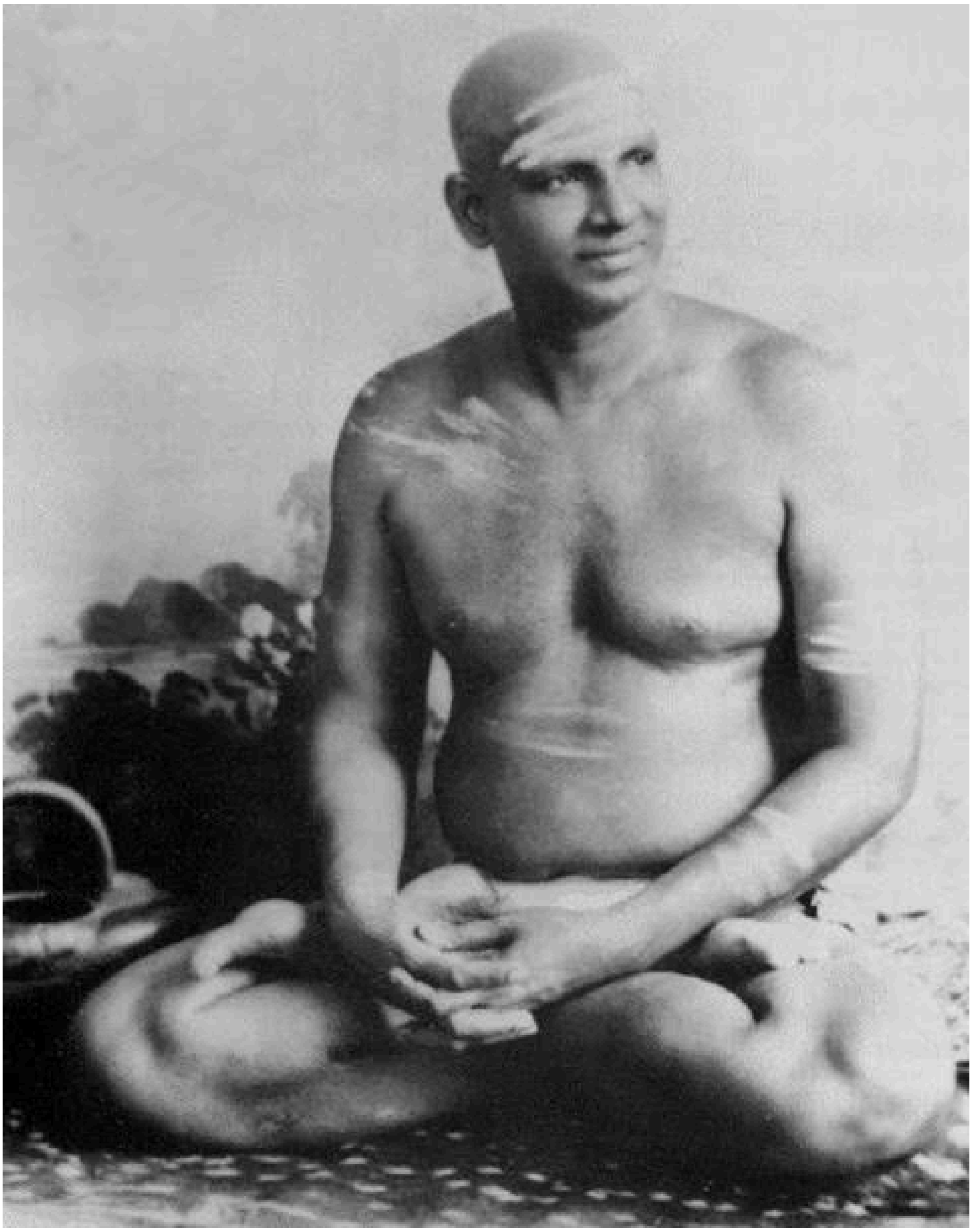




गीता-प्रबोधिनी

गीता-प्रबोधिनी

THEBHAGAVADGITAEXPLAINED
का अधिकल अनिुाद

लेखक
श्री स्वामी िधिानन्द सरस्वती

अनिुादक

श्री रामकुमार भारतीय

प्रकिाक
द िधिाइन लाइफ सोसायटी
पत्रालय : िधिानन्दनगर-249 192
धिला: धटहरी गढ़िाल, उत्तराखण्ड (धहमालय), भारत
www.sivanandaonline.org, www.dlshq.org
प्रथम धहन्दी संस्करण :१९८३

धितीय धहन्दी संस्करण : २०११

तृतीय धहन्दी संस्करण : २०१४

(१,००० प्रधतयााँ)

HS18

PRICE: 55/-

'द धिधाइन लाइफ सोसायटी, धिधानन्दनगर' के धलए
स्वामी पद्मनाभानन्द िारा प्रकाधित तथा उन्हीं ंके िारा 'योगि-ेदान्त
फारेस्ट एकिोमी प्ेरेस, धिधानन्दनगर, धि. धटहरी गढ़िाल,
उत्तराखण्ड, धपन २४९ १९२' में मुधित।
For online orders and Catalogue visit: dlsbooks.org

प्रकािकीय

श्रीमद्भगिद्गीता के धसद्धान्तों ंका समूपूणण दृधिकोण इस पुस्तक में संघधनत रूप में है। भगिद्गीता के धसद्धान्त समूपूणण मानिता के धलए आध्यात्मिक धिकास एिं साक्षात्कार हेतु हर युग के धलए सामान्य धनदेिन हैं; धकनुतु ितणमान समय, िब धक िीिन के हर क्ेषेत्र में व्यत्मि तनािग्रस्त एिं धिन्ता से प्रताधित है, इस ग्रन्थ का एक

ंिधेष महत्त्व एिं मूल्य है। भगिद्गीता ससीम आिा की पुकारों ंका उस असीम िारा धदया गया उत्तर है। यह
केिल ंिरती के मानि की पररत्मसथधतयों ंके हल ही प्रधतधबत्मित नहीं ंकरती, प्रत्युत् समस्त िैश्वीय अिसथाओं
ंका भी हल इसमें सधिधहत है। भगिद्गीता धकसी एक ि मण-ंिधेष की पाठ्य-पुस्तक नहीं,ं प्रत्युत् ि मण के
ास्तिधिक
स्वरूप का ग्रन्थ है। यह उस उच्चतर िेतना की िाणी है िो अपने पररपूणण स्वरूप को-परमिा-स्वरूप को
उद्घाधटत करती है। प्रस्तुत रिना में द ंिधाइन लाइफ सोसायटी के उपाध्यक्ष श्री स्वामी योगस्वरूपानन्द िी
महारिा का पररश्रम एिं प्रयास सत्मिधलत है।

-द डिवाइन लाइफ सोसायटी

ॐ नमो भगिते िासुदेिाय

गीता-ध्यान

हे िननी भगिद्गीते! मैं आपका ध्यान करता हाँ; क्ोंधक महाभारत के युद्ध-क्षेत्र में स्वयं भगिान् ने अपने मुखारधिन्द से अिुणन को आपका आध्यात्मिक ज्ञान प्रदान धकया था। मैं परम ज्ञान-स्वरूप महधषण व्यास का भी ध्यान करता हाँ धिन्होंने महान् ग्रन्थ महाभारत की रिना की िो 'पंिम िेद' कहलाता है; क्ोंधक इसमें मानि का समस्त ज्ञान समाधहत है। हे महषे! मैं आपको सािांग प्रणाम करता हाँ। ब्रह्माण्ड-िेतना के साथ एकािा होने के कारण आप भगिद्-उपदेशों ंको आिसात् कर सके। महाभारत हृदय-प्रदीप के तैल के सदृि है। आपने इस

दीप को गीता-ज्ञान से प्रज्वधलत धकया है और इस भााँधत लोगों ंकी अपनी दैधनक समस्याओं ंतथा अज्ञानान्धकार को

पराभूत करने में सहायता की है। हे महषे! आपको मेरा नमस्कार! आपने महान् ग्रन्थ महाभारत, ो धक व्यधि-सत्ता को धिश्व-सत्ता के साथ अपने को युि करने की धिधि की धिक्षा देने के कारण 'योगिास्त्र' भी कहलाता है, में धिधभि पररत्मसथधतयों ंमें कायण करने िाले धिधभि पात्रों ंके माध्यम से मानि-मन के धिधभि प्रकायों का ब्रा ही सुरुधिपूणण प्रधतपादन धकया है। आपने महाभारत युद्ध में पाण्डि-पक्ष की उच्चतर मन से और कौरि-पक्ष की धनम्नतर मन से तुलना की है।

महाभारत युद्ध की दुस्तीणण सररता के भीष्म तथा िोण दो प्रबल तट हैं। ये दोनों ंअपरीय योद्धा थे धिनसे अिुणन को अत्यधिक अनुराग था धिसके कारण िह धिषण्ण और युद्ध में अपना कतणव्य करने को अधनचु्छुक था। हे महषे ! आपने तित् धिक्षा दी धक आध्याधत्मक पथ में राग बहुत ब्रा अिरोि है। रिा ियिथ ने अनुधित सािनों ंसे अिुणन के पुत्र अधभमन्यु की हत्या की तथा युद्ध में भीषण क्रिो का केन्द्र-धबनदु बना। अतः महाभारत-युद्ध-सररता के िल की तुलना इस दुि रिा से की गयी है। दुयोिन तथा उसके भ्राताओं ंके मामा िकुधन, धिसने द्यूत-क्रीिा में कपट से धिय प्राप्तं की थी, की तुलना सररता-तल पर त्मसथत एक ब्रे नीलोत्पल से की गयी है िो नेत्रों ंको लुभाता और इस प्रकार व्यधि को सररता के सम्भाव्य संकटों ंके प्रधत असाििान बनाता है। िल्य इस िल में बलिाली ग्राह के सदृश्य है िो दुराक्रम्य है। कृपािायण इस सररता की प्रबल िारा है; क्योंधक उनका िौयण सेना को िेगिती िारा की भााँधत धनरन्तर आगे बढ़ने को उत्तेधित करता था। कणण, धिसे िनुधिणद्या में अपनी धनपुणता के कारण अधभमान था, की तुलना सररता की उत्ताल तरंगों ंसे की गयी है मानो िे अधभमान तथा दुराग्रह से कु्षब्ध हो रही हों।ं अश्वत्थामा तथा धिकणण ने िीभत्स रूप से पाण्डिों ंकी सेना के अनेक लोगों ंका संहार धकया; अतः िे सररता में अपने धिकार को धनगल िाने िाले मकर हैं। िैसे सररता में िलितण समस्त िल-प्रिाह को अपनी गधत की ओर धनधदणि करता है िैसे ही दुयोिन ने सम्पधत्त, सत्ता तथा पद के लोभ में आ कर पाण्डिों ंको नि करने के धलए अनेक धिश्वासघाती उपायों ंका प्रयोग धकया। इससे आपने यह धिक्षा दी धक सम्पधत्त, सत्ता तथा पद की कामना व्यधि के िीिन का पूणणतया सत्यानाि कर िालती है। आपने धिश्व को यह प्रकट कर धदया धक एकमात्र भगिान् तथा उनकी मधहमा के सतत स्मरण तथा िैसा पाण्डिों ंने भगिान् श्रीकृष्ण को आत्म-समपणण धकया था, उसी भााँधत सिणिधिमान् प्रभु को आत्म-समपणण करने से ही मनुष्य अपने िीिन के दैनत्मन्दन संघषों को पराभूत तथा इस िन्म-मृत्यु के िक्र-रूपी संसार सागर का सन्तरण कर सकता है। िैसे पाण्डि अपने कणणिार-रूप श्रीकृष्ण की सहायता से महाभारत-रूपी सररता पार कर गये िैसे ही मुझे िुद्ध मन तथा बुत्मद्ध प्रदान करें तथा अज्ञानान्धकार को पार कर अमरत्व का प्रकाि उपलब्ध करने के धलए भगिान् को सतत स्मरण करने तथा उन्ें आत्म-समपणण करने को मुझे समथण बनायें!

हे िसुदेि तथा देिकी के पुत्र तथा िृन्दािन की गोधपयों ंको परमानन्द प्रदान करने िाले भगिान् कृष्ण! आपको साष्टांग प्रणाम करता हाँ। िैसे स्वधगणक पाररिात िृक्ष की छाया के नीिे िाने से लोगों ंकी मनोकामनाएँ पूणण हो िाती हैं, उसी भााँधत आपने पाण्डि तथा अन्य धिन लोगों ंने आपके िरण कमलों ंकी िरण ली, उनके सभी क्लेि धिदूररत कर उन्ें धनष्काम तथा अमर बना धदया।

हे परम प्रभु! आपने पाथणसारधथ के रूप में दोनों ंसेनाओं ंके मध्य में अपने एक हाथ में िाबुक तथा दूसरे हाथ में ज्ञान-मुिा िारण कर अिुणन को भागितिमण का उपदेि धदया। इस ज्ञान-मुिा में मध्यमा, अनाधमका तथा कधनधष्ठका उँगधलयाँ सीिी तथा परस्पर सधन्नकट रखी िाती हैं िो प्रकृधत के धत्रधिि-सत्त्व, रि तथा तम-गुणों ंकी द्योतक हैं। तिणनी उँगली िीि की द्योतक है। यह अंगूठे की ओर अधभनत होती है और उसे स्पिण करती है। अंगूठा परम ब्रह्म का प्रतीक है। िब िीिात्मा तीनों ंगुणों ंसे पृथक् हो िाता है, तब िह ब्रह्म से योग प्राप्त कर लेता है।

हे िगद्गुरो, दुिों ंका संहार तथा सािुओं ंका पररत्राण करने िाले हे भगिान् कृष्ण ! मैं आपको नमस्कार करता हाँ। हे िििा, हे परमानन्द के स्रोत ! मैं आपको दण्डित् प्रणाम करता हाँ। एकमात्र आप ही िाक्शत्मिहीन मूक को िािाल (िाक्शत्मि धिधिध) तया गधतित्मिहीन पंगु को पिणत को अधतक्रमण करने िाला बना सकते हैं।

हे भगिान् कृष्ण! आपने ित्स-सदृ अिुणन तथा िुद्ध धित्त तथा भत्मिमय हृदय िाले व्यत्मि के लाभाथण गो-सदृ उपधनषदों ंसे समस्त ज्ञान के सार का दोहन धकया।

हे भगिान् कृष्ण ! मैं आपको आिे-धनिेदन करता हाँ। ब्रह्माधद देिता आपकी कृपा तथा स्व-स्व ित्मियों ं के प्राप्त्यथण िेद-गान िारा आपकी पूिा करते हैं। योगी िन गहन ध्यानािसथा में धनधिध हो आपमें तद्गत धित्त िारा आपका दिणन करते हैं। आपका सत्स्वरूप न तो स्वगण-त्मसथत देिताओं ंको और न पाताल-त्मसथत दैत्यों ंको ज्ञात है; क्योंधक आप सबके मूल स्रोत हैं। मैं आपको सािांग प्रणाम करता हाँ।

आपने अपने िैयत्मिक आदिण िारा तथा माििता को गीता के रूप में अपनी देन के िारा अपने में प्रधिलीन होने की प्रधिधि की धिक्षा दी। कृपा कर मुझे ऐसी कुिाग्र बुत्मद्ध प्रदान करें धिससे मैं आपके उपदेिों ंको ग्रहण कर सकूाँ तथा आपमें संधिलीन हो सकूाँ!

हे गीता माता! मैं आपका ध्यान करता हाँ। आप गीतोपधदि िीिन-यापन करने तथा सदा-सिणदा के धलए भागितीय िेतना की प्रात्मप्त में मेरे मन तथा बुत्मद्ध का पथ-प्रदिणन करें!

ॐ

गीता के िन्म की पृिभूधम

तृिरार और पाणु्डु दो भाई थे। िृतरार का धििाह गान्धारी के साथ हुआ था और पाणु्डु के कुन्ती तथा मािी नामक दो पधियााँ थीं। आखेट करते समय हुए पाप के कारण पाणु्डु रािा को यह श्राप था धक िह अपनी पिी के साथ सम्भोग नहीं कर सकेगा। कुन्ती ने छोटी अिस्था में ऋधष की एकधनि सेिा िारा िरदान प्राप्त धकया था, धिसके फल-स्वरूप उसको यम से युधिधिर, िायु से भीम और इन्द्र से अिुणन-इस प्रकार तीन पुत्र प्राप्त हुए थे। इसी प्रकार स्वगण के िैद्य अधश्वनीकुमारों िारा मािी से क्रमिः नकुल और सहदेि नामक दो िुड़िााँ बालक पैदा हुए थे। िृतरार को गान्धारी से १०१ पुत्र हुए थे। पाणु्डु की मृतु्य के पश्चात् िृतरार ने अपने पुत्र कौरिों के साथ पाणु्डुपुत्र पााँचों पाण्डिों का भी पालन-पोषण धकया। पाण्डि कौरिों के साथ छोटे से बड़े हुए थे; पर पाण्डिों के िौयण और बुत्मद्धमत्ता के कारण कौरि उन्ें अधिक समय तक अपने साथ न रख सके। अतः पाण्डिों

ने राज्य के अपने भाग धहसे्स में अलग रहने का धनश्चय धकया।

रािसूय यज्ञ के समय पाण्डिों का िैभि, सम्पधत्त और ऐश्वयण देख कर कौरिों में ज्येि दुयोधन के मन में घोर ईष्याण और लोभ का संिार हुआ। उसने अपने मामा िकुधन की दुि सलाह से युधिधिर को िुआ खेलने का आमन्त्रण दे कर छल-कपट से पाण्डिों को हराया। पाण्डि िुए में िौपदी-सधहत अपनी सारी सम्पधत्त हार गये और धनणणय हुआ धक पाण्डि िौपदी के साथ बारह िषण तक िनिास में तथा एक साल तक अज्ञातिास में रहें और तब तक दुयोधन पूरे राज्य पर िासन करे।

कौरिों िारा धदये गये अनेक प्रकार के कि और बािाओं को पार करते हुए पाण्डि अपने िनिास और अज्ञातिास के तेरह िषण समाप्त कर पूिण-धनणणय के अनुसार कौरिों से अपना राज्य िापस मााँगने लगे; परनु्तु दुयोधन ने उन्ें एक सूई के अग्रभाग धितनी िमीन देने से भी इनकार कर धदया। तब राज्य-प्रात्मप्त के धलए माता कुन्ती के परामिण एिं भगिान् श्रीकृष्ण की प्रेरणा से पाण्डिों ने कौरिों के साथ युद्ध करने का धनश्चय धकया। इस युद्ध में यादि-कुलभूषण भगिान् श्रीकृष्ण की सहायता प्राप्त करने के धलए कौरिों की ओर से दुयोधन को तथा पाण्डिों की ओर से अिुणन को िारका भेिा गया। उन्ोंने देखा धक श्रीकृष्ण भगिान् अपने महल में पलंग पर आराम कर रहे हैं। दुयोधन श्रीकृष्ण के धिर के पास िा कर बैठ गये और अिुणन भगिान् के िरणों के पास खड़े रहे। श्रीकृष्ण ने िब आाँखें खोली तो स्वभाितः उनकी निर सिणप्रथम पैरों के पास खड़े अिुणन पर पड़ी और बाद में पलंग के धसरहाने कुरसी पर बैठे दुयोधन को उन्ोंने देखा। श्रीकृष्ण ने उन दोनों से कुिल समािार तथा िारका आने का प्रयोिन पूछा। तत्कालीन प्रथा के अनुसार प्रथम दृधि अिुणन पर पड़ने के कारण श्रीकृष्ण ने पहले अिुणन

से ही प्रश्न धकया। श्रीकृष्ण ने अिुणन से कहा धक तुम मुझ धनःस्त्रि कृष्ण अथिा 'नारायणी-सेना' नामक मेरी समस्त िीित्मिाली सेना-इन दोनों ंमें से धकसी एक को पसन्द कर लो। श्रीकृष्ण ने यह भी िेतािनी दे दी थी धक िे स्वयं युद्ध में भाग नहीं ंलेंगे, न िस्त्र ही िारण करेंगे। िे केिल साक्षी-रूप ही रहेंगे। यह सब स्पि होने पर भी श्रीकृष्ण के सच्चे भि अिुणन ने िलित्मि-सम्पि 'नारायणी-सेना' की अपेक्षा न करके भगिान् श्रीकृष्ण को ही अपने पक्ष में लेना पसन्द धकया। दुयोिन ने अिुणन को मूखण मान कर बिी उमंग के साथ अपने धलए िीित्मिाली नारायणी सेना की इच्छा प्रदधिणत की और श्रीकृष्ण से आश्वासन पा कर हधषणत हो हत्मस्तनापुर लौट आये।

श्रीकृष्ण ने िब अिुणन से पूछा धक िे युद्ध में िस्त्र तो िारण नहीं ंकरेंगे, धफर उनको उसने क्यों ंपसन्द धकया? तब अिुणन ने कहा धक भगिन् आप तो दृधिमात्र से ही सारी सेना का संहार करने में समथण हैं, धफर मुझे धनःसत्त्व सेना की क्या आिश्यकता है? आप मेरे सारधथ बनें, यह मेरी बहुत धदनों ंसे हाधदणक इच्छा है। अतएि आप कृपा कर इस युद्ध में मेरी इस इच्छा की पूधतण करें। भिों ंको हृदय से िाहने िाले प्रभु ने उसकी यह प्राथणना सहषण स्वीकार कर ली। इस प्रकार महाभारत के युद्ध में श्रीकृष्ण अिुणन के सारधथ बने।

िारिका से दुयोिन और अिुणन के लौट आने के बाद स्वयं भगिान् श्रीकृष्ण पाण्डिों ंकी ओर से मध्यसथता करने हत्मस्तनापुर गये और उन्ोंनें युद्ध टालने का भरसक प्रयि धकया; परनु्त अहंकारी दुयोिन ने अपने मामा िकुधन की सलाह से िात्मन्त–िाताण की उपेक्षा कर श्रीकृष्ण को बन्दी बनाने की कोधिि की। तब श्रीकृष्ण ने उन्ें अपना धिराट् स्वरूप का दिणन कराया। अने्धे राजा िृतरािर अपने पुत्रों ंके मोह-बन्धन के कारण उन्ें अपने काबू में नहीं ंरख सके और कौरिों ंमें ज्येि दुयोिन ने धमथ्याधभमान से प्रेररत हो कर िीित्मिाली पाण्डिों ंके साथ युद्ध में सामना करने का दृढ़ धनश्चय कर धलया।

दोनों ंओर से िब युद्ध की तैयाररयाँ होने लगीं, ंतब मुधन िेदव्यास अने्धे िृतरािर के पास गये और कहा धक यधि तुम इस भयंकर सत्यानािी युद्ध को खुली आँखों ंसे देखना िाहते हो तो मैं तुम्हें दृधि प्रदान कर सकता हूँ। िृतरािर ने कहा "हे ब्रह्मधषणयों ंमें श्रेष्ठ मुधनिर! अपने कुटुत्मियों ंका संहार खुली आँखों ंसे देखने की मेरी धबलकुल भी इच्छा नहीं ंहै; परनु्त युद्ध का सारा धििरण सुनने की मेरी इच्छा है।" इस पर व्यास मुधन ने िृतरािर के धिश्वासपात्र सलाहकार संजय को धदव्य दृधि प्रदान की और अने्धे राजा से कहा धक युद्ध के सारे प्रसंगों ंका िणणन संजय तुम्हें सुनायेंगे। इस युद्ध में जो-कुछ होगा, उसे संजय सभी देख सकेंगे अथिा अप्रत्यक्ष रूप से जान सकेंगे। उनकी आँखों ंके सामने या पीठ पीछे, धदन में या रात में, प्रकट-अप्रकट रूप से जो भी आिार-धििार होंगे, िे उनकी दृधि से धछपे नहीं ंरह सकेंगे। जो कुछ घटनाएँ होंगी, उनका यथाथण धित्रण संजय के मुख उपत्मसथत हो जायेगा। उन्ें धकसी प्रकार की िस्त्र बािा भी नहीं ंहोगी और िह तुम्हें युद्ध का िृत्तान्त सुनाने में थकेंगे भी नहीं; ंपर अन्त में सत्य की ही धिजय होगी।

कौरि-पाण्डिों ंके बीि सतत महाभारत युद्ध िलते रहने पर दि धदन के अन्त में िब महान् योद्धा भीष्मधपतामह को अिुणन ने उनके रथ से नीिे धगराया, तब संजय ने िृतरािर को यह खबर सुनायी। बाद में दुःखग्रस्त अने्धे राजा िृतरािर ने संजय से धपछले दि धदनों ंतक लिे गये युद्ध का समूपूणण धििरण सुनाने की इच्छा व्यि की। बस, यहीं ंसे भगिद्गीता का आरम्भ होता है।

धिषय-सिूी

प्रथम अध्याय

अिुणनधिषादयोग

अहंकारी मन, स्वाथण तथा आतुरता से अन्धे बने ि‍ृतरिर संिय से पूछते हैं धक उनके स्विनों ‍ंऔर पाणुडु के पुत्रों ‍ंने युद्ध के धलए उतुसुक हो कर ि‍मणक्षेत्र-कुरुक्षेत्र में क्ा-क्ा धकया ? ि‍हााँ ि‍ युद्ध के धलए एकधत्रत हुए हैं, हि ि‍मणक्षेत्र कहलाता है, क्ोंधक अधि, इन्द्र, ब्रह्मा आधद देिताओं ‍ंने ि‍हााँ तप धकया था। ि‍ह भूधम कुरुक्षेत्र भी कहलाती है; क्ोंधक कौरिों ‍ंके पूिणि कुरु रािा ने भी ि‍हााँ घोर तपश्चयाण की थी। यह मान्यता थी धक ि‍मणयुद्ध में ि‍ो इस भूधम पर अपने प्राण त्याग करेंगे, ि‍ स्वगण में पहुाँिेंगे। अतः युद्ध के धलए यह सथान पसन्द धकया गया था। संिय ने कहा धक कौरिों ‍ंके रािा दुयोिन ने पाण्डिों ‍ंकी सेना देखी। कौरि-सेना की तुलना में उसका संख्या-बल कम होने पर भी उसकी वूयूह रिना के कारण ि‍ह सेना धिशाल धदखायी देती थी। दुयोिन अधभमानपूिणक अपने गुरु द्रोणािायण के पास गये। उन्हें सत्यधनि पाण्डिों ‍ंके साथ युद्ध करना था। अतः अपने अन्तर के भयातुर भाि को धछपा कर ि‍ द्रोणािायण को ि‍ुपद के साथ उनकी ि‍ुरुता का स्मरण करा कर प्रधतकार का भाि उदीप्त करना िाहते थे; क्ोंधक ि‍ुपद रािा के पुत्र पाण्डि-सेना की वूयूह रिना कर रहे थे। ि‍ोणािायण के ि‍ौयण की प्रिसा

इसधलए भी की गयी; क्ोंधंक श्रीकृष्ण, अिुणन, भीम तथा पाण्डिों ंके पक्ष के अनेक िीत्मिाली योद्धाओं ंकी ित्मि का उन्ें भान था। िे यह भी िानते थे धक िे स्वयं अिमाणिरण कर रहे हैं। अपने सेनापधत भीष्मधपतामह को उते्तिना देने के धलए उन्ोंनें अन्य सभी योद्धाओं ंको उनकी सब ओर से रक्षा करने का आदेि दे धदया।

सबसे िियोिृद्ध एिं सेनानायक भीष्मधपतामह ने युद्ध आरम्भ करने का आिाहन िंख बिा कर धकया। पश्चात् कौरि-दल के अन्य योद्धाओं ंने भी िंख, मृदंग, नगिो़ एिं रणभेरी के तुमुलनाद से रणक्ेषत्र को गुंिा धदया। इसके पश्चात् पाण्डि-पक्ष में भी िायुपुत्र हनुमान् की आकृधत से अंधकत ध्विा फहराते श्वेेत अश्वों ंसे युि सुसत्मित रथ में बैठे हुए भगिान् श्रीकृष्ण और अिुणन तथा अन्य योद्धाओं ंने अपने धदव्य िीत्मिाली िंखों ंकी प्रिण्ड ध्वधन से कौरिों ंके युद्ध के आिाहन का प्रतुयुत्तर धदया। उनकी गिणना से आकाि और पृथ्वी ही धननाधदत नहीं ंहुई, अधपतु समस्त कौरि-सेना के हृदय में भय का संिार हुआ।

ृतिरार के पुत्रों ंको युद्ध-कायण के धलए अित्मसथत देख कर योद्धाओं ंके दिणन हेतु अिुणन ने श्रीकृष्ण को अपना रथ दोनों ंसेनाओं ंके बिी ला कर ख़िा करने को कहा। श्रीकृष्ण ने रथ िहाँ भीष्म, िोण तथा अन्य महान् योद्धा ख़िै थे, िहाँ ला कर ख़िा धकया। धिदुर िी ने युद्ध से होने िाले धिन अधनिों ंका िणणन धकया था, अपने गुरुिनों ंऔर सगे-सित्मन्धयों ंको देख कर, उनकी याद अिुणन के मन में तािी हुई। पाण्डिों ंको हिता करने के धलए िकुधन को एक कपट-युत्मि सूझी। उसने पाण्डिों ंके प्रधत अत्यन्त सहृदय आदर-भाि रखने िाले धिदुर िी से िा कर कहा धक िे पाण्डिों ंके पास िा कर उन्ें समझायें धक युद्ध के क्ा अिांछनीय पररणाम हो सकते हैं। फलतः इस युद्ध के िारा उनके ही गुरु एिं सिन्धी–िनों ंकी हत्या का पाप, अनेक त्मस्त्रयों ंके पधत-मरण से िैधिा होने की िित्ता एिं उससे दुरािार, व्यधभिार के प्रसार की सम्भािना, राष्ट्र की सम्पधत्त और िैभि का धिनाि, घोिो़, हाथी आधद धनदोष प्राधणयों ंका संहार आधद के सिन्ध में धिदुर िी ने अिुणन को सब बातें बतलायीं।ं इस परामिण को स्मरण कर अिुणन बहुत दुःखी हुए और उन्ोंनें युद्ध से इनकार धकया।

अपने गुरुओं ंऔर सगे-सित्मन्धयों ंको मारे धबना राज्य करने की इच्छा प्रदधिणत करने के सथान में अिुणन अपने क्षधत्रय िमण को भूल कर श्रीकृष्ण से कहने लगे धक उनके हाथ में गाण्डिी धनुष को पकि़ कर रखने तक की ित्मि नहीं ंरह गयी है तथा युद्ध में उनके पराभि के अपिकुन भी उन्ें धदखायी देने लगे हैं। अपने गुरुिनों ंकी हत्या के भि से धित्मन्तत एिं भगिान् श्रीकृष्ण की ित्मि से अपररधित अिुणन धिधान् के समान युद्ध के अधनि पररणामों ंका िणणन करते हुए कहने लगे धक गुरुओं ंएिं सगे-सित्मन्धयों ंको मार कर िे राज्य का आनन्द भोगना नहीं ंिाहते और इस युद्ध िारा यधद तीनों ंलोकों ंका राज्य भी उन्ें धमलता हो तो भी उसकी उन्ें िाह नहीं ंहै। अिुणन यह मानते हैं धक सगे-सित्मन्धयों ंकी मृतुयु के पश्चात् साम्राज्य का उपभोग करने की अपेक्षा मोह के ििीभूत हुए कौरि ही उन्ें मार िालें तो अच्छा है। श्रीकृष्ण की सिणज्ञ ित्मि को भूल कर िे माया और िोक से पीधि़त हो कर यह तकण करते हैं धक कुटुि के नाि से कुल-परम्परागत सनातन िाधमणक धिधियों ंका नाि होगा, त्मस्त्रयााँ व्यधभिाररणी बनेंगी, धिससे िणणसंकरता होगी तथा आत्मिनों ंके नाि करने से नरकिाास भोगना पि़ेगा। अिुणन यह सोिते हैं धक िे स्वयं धन िस्त्र और प्रधतकार-रधहत हो कर युद्ध में ख़िे रहे और कौरि उन्ें मार िालें। यही श्ेरेयस्कर है। इस प्रकार अपनी असमथणता व्यि करते हुए िोकमि अिुणन अपने धनुष-बाण को एक ओर छोि़ कर रथ पर धिषण्ण अन्त करण से बैठ गये।

इस अध्याय में मनुष्य को धनम्नांधकत उपदेि धमलते हैं धृतराष्ट्र के समान िब मनुष्य का मन मोह और स्वाथण से अन्धा हो िाता है, तब िह राष्ट्रधहत की परिाह नहीं ंकरता और पररणाम स्वरूप अपने ही आत्मिनों ंएिं समस्त राष्ट्र के धिनाि का कारण बनता है।

दुयोन के समान मन िब अधभमान, ईष्याण, लोभ, कपट, अहंकार, कीधतण की इच्छा तथा नाम और सत्ता की कामना से अधभभूत होता है, तब मनुष्य अपने धमत्रों ंतथा सगे-सित्मन्धयों ंएिं प्रिा का नाि करने में नहीं ं धहिधकाता और अन्ततः िह अपना ही नाि कर लेता है।

अिुणन के समान मनुष्य िब मोह और कामनाओं ंसे ग्रधसत हो, स्विमण-पालन में धनष्फल होता है, तब िह अपने बल एिं साहस को खो बैठता है और श्रीकृष्ण िैसे प्रभु के सिुख होते हुए भी भगिान् की उपत्मसथधत का अनुभि नहीं ंकर पाता।

संिय के समान मनुष्य िब सहृदयी, ईश्वर-भि, स्वामी भि और धनष्काम हो कर ितुरु एिं धमत्र के प्रधत समान भाि रखता है, तब उसे मानधसक िात्मन्त प्राप्त हो कर ईश्वर के धिश्व-रूप का दिणन होता है।
इस अध्याय में यह समझाया गया है धक िनि ही मनुष्य के दुख का मूल कारण है। अिुणन के व्यत्मित्व के दुधिधायुि िाररत्र्य, उसके मन और हृदय एिं धिार और लगन के बीि की धिसंाधिदता के कारण ही ऊपर िणणन की गयी आपधत्तयााँ उपत्मसथत हुई हैं। एक ओर िहााँ पापी ितुरुओं ंका नाि करने के धलए उनका क्षधत्रय िमण उन्हें प्रेररत करता है, िहीं ंदूसरी ओर अपने सगे-सित्मन्धयों ंतथा गुरुिनों ंके स्नेह एिं प्रेम के धलए उनका हृदय छटपटाता है; अतः उनके धिनाि का धनधमत्त बनने से िे बिना िाहते हैं। इस प्रकार की आन्तररक धिसंाधिदताएाँ अिुणन के िारीररक, मानधसक, बौत्मद्धक, नैधतक एिं आध्यात्मिक स्तरों ंको असन्तुधलत बना कर उनके मन में धिषाद उत्पि करती हैं।

इस प्रकार 'अिुणनधिषादयोग' नामक यह प्रथम अध्याय समाप्त होता है।

धितीय अध्याय

सांख्ययोग

मोह और भय से व्यग्र हुए अिुणन की पररत्मसथधत का संयि िणणन करते हैं। अपना आिय स्पि रूप से प्रकट करने के सथान में अिुणन दम्भ से कुटिु के प्रधत कतणव्य, युद्ध से होने िाले दोष, पूज्य िो णािायण एिं भीष्मधपतामह की हत्या आधद की बातें करते हैं। श्रीकृष्ण के सन्तोष के धलए िे त्याग की भािना और धभक्षा माँग कर ििीन-धनिाणह करने की अपनी इच्छा व्यि करते हैं।

अिुणन की इस त्मसथधत को देख कर भगिान् श्रीकृष्ण उनके धिषादपूणण हृदयदौबणल्य के धलए उनकी भत्सणना करते हैं और उन्ें युद्ध के धलए प्रोत्साधहत करते हैं। मन में िब धिरोिी धिचार उठते हैं, तब मनुष्य धंकंकतणव्यधिमूढ़ बन िाता है। ऐसे समय पर मनुष्य को धकसी ज्ञानी पुरुष अथिा गुरु का परामिण आिश्यक होता है। बारिार संसार के थपेड़े खा कर मनुष्य का अहंभाि अपनी असमथणता एिं असहायता का अनुभि करता है और तब िात्मन्त की आिा से सिणित्मिमान् प्रभु की ओर मुड़ता है, उसकी िरण में िाता है। अिुणन भी अपनी काल्पधनक धचन्ता और बुत्मद्धमत्ता के अहंकारपूणण धिचारों ंसे श्रीकृष्ण को धनश्चय कराने में असफल धसद्ध हुए, तब उन्ें अपनी धनबणलता का भान हो गया और िह अनन्य भाि से श्रीकृष्ण की िरण में आ कर उनके आधश्रत बन गये, सच्चे अथण में उनके िह धिष्य बन गये। अपने मन की उलझन पर धििय प्राप्त करने के धलए उन्ोंने भगिान् श्रीकृष्ण से मागणदिणन की प्राथणना की। तब मुस्कराते हुए श्रीकृष्ण अिुणन के अज्ञान और काल्पधनक भय को दूर करते हैं। अिुणन की उत्सुकता, सहृदयता, धनःस्वाथण िरणागधत और आिज्ञानाभाि को देखते हुए उन्ें प्रथम 'सांख्ययोग' अथाणत् आिा के सच्चे स्वरूप का ज्ञान कराते हैं और उसके पश्चात् िीिन के अत्मन्तम उद्देश्य अथाणत् परम साक्षात्कार को प्राप्त करने के मागण 'कमणयोग' का उपदेि देते हैं। िे आिा के अधिनािी स्वभाि के धिषय में धिक्षा देते हुए कहते हैं धक आिा के धलए भूत, ितणमान और भधिष्य का कोई अथण नहीं ंहै। िह धत्रकालाबाधित है। अिुणन की मयाणधदत बुत्मद्ध को ध्यान में रखते हुए भगिान् श्रीकृष्ण बाल्यािसथा, युिािसथा तथा िृद्धािसथा के िारीररक पररितणनों ंका उदाहरण दे कर समझाते हैं धक इन पररितणनों ंके कारण िैसे व्यत्मि का 'मैं'-पन नहीं ं बदलता, िैसे ही िन्म-मरण आधद के कारण भी आिा में कोई फेर-बदल नहीं ंहोता। धिस प्रकार पुराने िस्त्रों ंको छोड़ कर मनुष्य नये िस्त्र िारण करता है, उसी प्रकार िीि पुराना िरीर छोड़ कर नये िरीर को ग्रहण कर लेता है। धिन-धिन इच्छाओं ंकी तृत्मप्त के धलए िीि इस संसार में िन्म लेता है, उनका अनुभि लेने के बाद िह िरीर त्याग देता है।

इत्मन्द्रयों ंके साथ धिषयों ंके सम्पकण से प्रत्येक व्यत्मि सुख-दुःख, िीत-उष्ण आधद का अनुभि करता है। इत्मन्द्रयाँ नाधड़यों ंके माध्यम से अपनी अनुभूधत को मन तक पहुँचाती हैं। मनुष्य को चाधहए धक िह योग साधना िारा इत्मन्द्रयों ंको कछुए के समान समेट कर उन्ें धिषयों ंसे खींच ले और मन को सन्तुधलत रखे। भगिान् श्रीकृष्ण कहते हैं धक धिस मनुष्य में सुख और दुःख को समान मानने की क्षमता है, िही अमरता को प्राप्त करने का

अधिकारी होता है। आिा अधिकारी और सत् है। अन्य िो धिकारी िसुतुएँ हैं, िे सब असत् हैं। इस अधिनािी आिा का कोई नाि नहीं ंकर सकता। व्यत्मि िो िब यह ज्ञान हो िाता है धक आिा का िन्म-मरण नहीं ंहै, तब हि इस नािान् िरीर के नि होने पर कभी िोक नहीं ंकरता। पृथ्वी, िल, तेि, िायु और आकाि- इन पंमिहाभूतों ंके परे िो आिा है, उसको न िस्त्र काट सकते हैं, न िह िल से भीगता है, न उसे अधि िला सकती है और न उसे िायु ही सुखा सकती है। िह सिणव्यापी, िाश्वत, अधिकारी और अधिल है। श्रीकृष्ण अिुणन को बताते हैं धक िह धिन िीत्मिाली िस्त्रों ंसे अपने सगे-सित्मन्धयों ंको मारने का धिार कर रहा है, िे धकसी को मार िालने में असमथण हैं। आिा का बुत्मद्ध िारा िणणन नहीं ंधकया िा सकता और न उसे िाना िा सकता है। िह
इत्मन्द्रयग्राह्य भी नहीं ंहै; क्ोंधक िह इत्मन्द्रयों ंकी पहुँि से सिणथा परे है।
भगिान् श्रीकृष्ण अिुणन के धिधक्षप्त मन को समझाने के धलए युद्ध के भौधतक लाभों ंका िणणन करते हैं। िे कहते हैं धक क्षधत्रय का सुख पाररिाररक आनन्द या भौधतक भोगों ंमें नहीं;ं अधपतु िमणसथापना हेतु सत्य एिं न्याय के संग्राम करने में है। श्रीकृष्ण कहते हैं, "यधद तुम ििुरु पर धिजय प्राप्त कर लोगे, तो िसुन्धरा पर सुखपूिणक राज्य कर सकोगे और यधद युद्ध में तुम्हारी मृतुयु हो गयी तो भी तुम्हें स्वगण की प्रात्मप्त होगी। यधद तुमने इस समय युद्ध करने के अपने स्विमण का पालन नहीं ंधकया, तो तुम्हें अपने स्विनों ंिारा ही अपमाधनत होना पिेगा, िो धक मृतुयु से भी अधिक दु:खदायी एिं ग्लािनक है। पररणाम की आिा न रखते हुए सुख एिं दु:ख में मन का सनुतुलन बनाये रख कर यधद तुम कतणव्य-भािना से युद्ध में प्रिृत्त होगे, तो तुम्हें कदाधप पाप नहीं ंलगेगा।"

श्रीकृष्ण ने अिुणन को प्रारम्भ में 'सांख्ययोग' का उपदेि धदया और तत्पश्चात् धनःस्वाथण सेिा का मागण अथाणत् फलाकांक्षा छोि़ कर कमण करने की कला- 'कमणयोग' धसखाया। श्रीकृष्ण कहते हैं धक िो भी कमण आ िायें िे स्वागत योग्य हैं, यधद उन्ें सनुतुधलत मन से कुिलतापूिणक सम्पन्न धकया िाये। िब हम धकसी कायण के फल की इच्छा नहीं ंरखते, तब कमण करते समय मन िान्त रहता है। ज्ञानी की एकाग्र बुत्मद्ध का कारण उसकी धनष्काम िृधत्त ही है तथा अज्ञानी की धिधिधलत बुत्मद्ध का कारण कामना है। बुत्मद्ध की एकाग्रता के िारा ही अमरता प्राप्त करने की आिा की िा सकती है।

श्रीकृष्ण इस अध्याय में धिसका मन सनुतुधलत एिं धनःस्वाथण है ऐसे कायणरत कमणयोगी की प्रिंसा करते हैं और अिुणन को युद्ध के प्रसंग में भी िैसे भी बनने का आदेि देते हैं। िे अिुणन को राज्य की प्रात्मप्त अथिा उसके संरक्षण की कामना से रधहत हो युद्ध करने का परामिण देते हैं। इस प्रकार व्यत्मि प्रकृधत के सत्त्व, रि और तमस् नामक तीन गुणों ंसे परे हो कर अपनी आिा में त्मसथत होता है। धिसे आिज्ञान हो िाता है, िह िानता है धक तीनों ं लोकों ंमें प्राप्त करने योग्य कुछ भी नहीं ंहै। इसधलए िय-पराजय, हाधन-लाभ आधद में व्यत्मि का मन सनुतुधलत रहना िाधहए। इसी को योग कहते हैं। मोह-रधहत हो कर हर समय मन को सनुतुधलत रखते हुए कमण करना 'कमणकौिल' कहलाता है। मन का सनुतुलन रखने से व्यत्मि िुभ और अिुभ-दोनों ंप्रकार के कमों का त्याग कर परम िैतन्य अथाणत् आि-साक्षात्कार प्राप्त कर करता है। यह सब सुन कर अिुणन त्मसथर मन िाले (त्मसथत-प्रज्ञ) मनुष्य के धिषय में िार प्रश्न पूछते हैं धक ऐसे मनुष्य की पररभाषा क्ा है तथा िह कैसे बोलता, बैठता और िलता है? श्रीकृष्ण कहते हैं धक त्मसथत-प्रज्ञ मनुष्य की कोई आकांक्षा नहीं ंहोती। िह आिज्ञान और िासना-क्षय का एक-साथ अनुभि करता है। िब मन में कोई िासना नहीं ंहोती, तब उसके पररणाम-स्वरूप होने िाले भय और क्रोि िैसे दूषण भी उसमें नहीं ंरहते, उनका अपने-आप नाि हो िाता है। भगिान् कहते हैं धक धिस पुरुष में ज्ञानोदय हो िाता है. िह तात्काधलक पररत्मसथधतयों ंसे धिधिधलत नहीं ंहोता। उसमें राग, िेष नहीं ंहोते। िह िगत् का न तो आधलंगन करता है और न उससे घृणा ही करता है, अधपतु कछुए के समान अपनी इत्मन्द्रयों ंको समेट कर उन्ें अन्तमुणखी बना लेता है। सबमें परमािा का साक्षात्कार करने िाला अपनी इत्मन्द्रयों ंपर अधिकार पा लेता है। श्रीकृष्ण अधनयत्मन्त्रत मन की आँिी में फँसी हुई नौका से तुलना करते हैं। िासना की िायु का झौंका आते ही मन िािािोल हो िाता है और बुरा कमण करने के धलए प्रेररत करता है। सामान्य मनुष्य की अंिेरी रात धितेत्मन्द्रय मनुष्य के धलए िाग्रत अिसथा के समान है। इसके धिपरीत सामान्य मनुष्य का धदन धितेत्मन्द्रय मनुष्य के धलए राधत्र

के समान है। त्मसथत-प्रज्ञ योगी के धिश्वि-भि में सारी धिधिधिताएँ धिलीन हो ◌िाती हैं। त्मसथत प्रज्ञ योगी अनासि सिमय ि◌िन धबताता है।

इस अध्याय में समझाये गये सांख्य–िास्त्र में भारतीय षि्दिणनों ◌ंके मूलभूत धसद्धान्तों ◌ंका सधिमो धकया गया है। भगिद्गीता का योग मनुष्य को अपने दैनत्मन्दन ि◌िन में उसे धकस प्रकार उतारा ◌िाये, इसकी धिक्षा देता है। भगिान् ि◌िन का धिसूतृत ज्ञान देते हैं, धिसको हृदयंगम करने से अनन्त की अनुभूधत के साथ मानि के समस्त दुःख दूर हो सकते हैं।

इस अध्याय में भगिान् मानि को ◌िनि से परे होने का मागण एिं संघषों पर धिधिय पाने की ◌िैज्ञाधनक पद्धधत बतलाते हैं। ◌ि कहते हैं- 'साक्षी बन कर रहो', धत्रगुणातीत बनो', '◌िनि से परे हो कर अहंभि को छोि़ कर धिओ', 'फल की आिा धकये धबना कमण करो', 'परम सत् के साथ अपना ऐक् समझ कर कमण करो' आधद-आधद। धिसे आि-साक्षात्कार हो गया है, ऐसे त्मसथत-प्रज्ञ पुरुष के लक्षण बता कर भगिान् श्रीकृष्ण मनुष्य की धमथ्या ◌िारणाओं ◌ं को दूर करते एिं उधिकास की सभी श्रेधणयों ◌ंतथा प्रक्रमों ◌ंमें सम्भाव्य मोक्ष-प्रात्मप्त की प्रधक्रयाओं ◌ंको प्रसुतुत करते हैं।

इस प्रकार यह 'सांख्ययोग' नामक धितीय अध्याय समाप्त होता है।

तृतीय अध्याय

कमणयोग

धपछले अध्याय में भगिान् श्रीकृष्ण ने यह उपदिे धदया था धक सनुतुधलत मन से धकया हुआ कमण 'बुत्मद्धयोग' है। फल की आिा से धकया हुआ कमण 'बुत्मद्धयोग' से बहुत धनम्न कोधट का कमण है। अिुणन इसका अथण नहीं ◌ंसमझ सके। उन्होंने समझा धक बुत्मद्ध और कमण-ये दो ◌िब्द क्रमिः ज्ञान और कमण-मागण के प्रतीक हैं। अतः उन्होंने श्रीकृष्ण से पूछा धक 'क्ा आप ज्ञान को कमण से श्रेितर समझते हैं? और यधद ऐसा है तो धफर मुझे आप इस भयंकर कमण, युद्ध के धलए क्ों ◌ंप्रेरेरत करते हैं? क्ा करने से परम कल्याण हो सकता है, कृपया समझायें।' तब श्रीकृष्ण सधिस्तार उन्हें समझाते हैं। ◌ि कहते हैं धक धिद्या और अधिद्या के समन्वय से 'कमणयोग' का आिरण करना ◌ाधिहए। अहन्ता-सधहत ◌ितना धिद्या है और अहन्ता-रधहत अज्ञान अधिद्या है। इन दोनों ◌ंके सत्-पक्ष का संयोग अथाणत् अहंकार-रधहत ◌ैतन्य 'कमणयोग' कहलाता है। धपछले अध्यायों ◌ंमें भगिान् श्रीकृष्ण ने सांख्ययोग और कमणयोग नामक दो मागों का ◌िणणन धकया है। इस अध्याय में ◌ि कमणयोग का धिश्लेषण करते हैं तथा दैधनक ि◌िन में उसका व्यािहाररक उपयोग बतलाते हैं। कमण-संन्यास ◌िारा कोई भी व्यत्मि पूणणता को प्राप्त नहीं ◌ंकर सकता; क्ोंधक उसका मन गुप्त रूप से अन्दर कायण करता रहता है। प्रकृधत के तीनों ◌ंगुण-सत्त्व, रि और तम ◌िरीर, मन और बुत्मद्ध-सधहत संसार की प्रत्येक ◌िसुतु पर अपना अधिकार ◌िमा लेते हैं और इस कारण कोई भी मनुष्य सदैि ◌ान्ति नहीं ◌ंरह सकता। ◌िो मनुष्य बाह्यािार में इत्मन्द्रयों ◌ंका धनरोि कर कमण-संन्यास करता है और दूसरा कोई न देखे, इस प्रकार भीतर-ही-भीतर कामनाओं ◌ंमें धिरता है, ◌िह दम्भी है। दूसरी ओर ◌िो व्यत्मि भीतर से आिा के धिषय में मनन-धिन्तन करता है और पररणाम एिं फल की आिा न रखते हुए बाहर से कमण करता है, ◌िह कमणयोगी है। कोई भी कमण-संन्यासी बन कर अपने ◌िरीर तक का धनिाणह भी नहीं ◌ंकर सकता; क्ोंधक श्वासोच्छवास लेना, देखना, सुनना, भोिन करना, पिाना आधद सभी व्यािहार भी तो धक्रया ही हैं। श्रीकृष्ण अिुणन को कताणपन

का अधभमान छोि़ कर कमण करने के धलए समझाते हैं। िगत् स्वयं कमण से बाँाि हुआ है। स्वाथण-भिाना-रधहत धकया गया कमण यज्ञ-स्वरूप है। िो व्यत्मि इस यज्ञ-भिाना से कमण करता है, उसका हृदय धनमणल होता है और िह ईश्वर-साक्षात्कार की ओर उनुमुख हो िाता है। इसधलए श्रीकृष्ण अिुणन को धकसी भी प्रकार की कामना न रखते हुए कतणव्य-भिाना से यज्ञ (कमण) करने का उपदेि देते हैं।

सािणधनक उद्देश्य से प्रेररत हो कर धकया गया सहेतुक कमण कमणयोग है। कमण ईश्वर की पूिा है, ऐसा समझ कर व्यत्मि को अपने कतणव्य का पालन करना िाधहए। िब पूिा की भिाना से धिधारपूिणक कमण धकया िाता है, तब िह युगपत् कमणयोग, भत्मियोग और ज्ञानयोग बन िाता है। इसधलए धिस प्रकार िषाण, सूयण, िृक्ष आधद समस्त संसार के कल्याण के धलए यज्ञ-रूप कमण अधिरत करते रहते हैं, िैसे ही प्रत्येक व्यत्मि को अपने कतणव्य का पालन करना िाधहए। श्रीकृष्ण रािा िनक तथा अन्य महापुरुषों ंका उदाहरण देते हैं, धिन्होंने कमण िारा पूणणता प्राप्त की थी। यहााँ भगिान् अिुणन को अन्य योद्धाओं ंका नेतृत्व करने के उनके उत्तरदाधयत्व का भान कराते हैं; क्योंधक िे सब उनके साहस और िस्त्र-धनपुणता पर धनभणर थे। यहााँ तीनों ंलोकों ंसे धकसी प्रकार की अपेक्षा न रखते हुए फलाकांक्षा-रधहत हो कर कमण करने का रहस्य श्रीकृष्ण अिुणन को समझाते हैं। श्रीकृष्ण कहते हैं धक िे स्वयं तीनों ंलोकों ंके धिषय में सब-कुछ िानते हैं। अिुणन के मन की बात िानने की ित्मि भी उनमें है। श्रीकृष्ण अिुणन के दम्भपूणण भिा की अप्रत्यक्ष रूप से धनन्दा करते हैं। अिुणन को भली-भााँधत समझ में आ िाये, इस प्रकार श्रीकृष्ण युद्ध में उनकी स्वयं की भूधमका और दृधिकोण को उद्घृत करते हैं। िे कहते हैं धक ज्ञानी पुरुष को िाधहए धक स्वयं कमण का त्याग कर अथिा दूसरों ंको इस प्रकार की धिक्षा दे कर उनको अपने िमण के पालन-रूप कमण से उपरत न करे। ऐसे व्यत्मि को स्वय मागणदिणक एिं उदाहरण-स्वरूप बन कर दूसरों ंका नेतृत्व करना िाधहए। इस प्रकार का ज्ञानयुि मागणदिणन धमलने पर समस्त संसार ज्ञानी का अनुकरण करने लगेगा। कताणपन की भिाना के सिन्ध में अिुणन की मनोिृधत्त की पुन भत्सणना करते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं धक प्रकृधत के गुण बाह्य िस्तुओं ंके गुणों ंपर प्रभिा िालते हैं और अन्तत यह तथ्य ही कमण का रहस्य है।

मानि–िरीर प्रकृधत–धनत है। सत्त्वगुण की प्रिानता से व्यत्मि िुभािुभ कमों के भेद को िान सकता है। व्यत्मि प्रकृधत के सब गुणों ंका साक्षी भी बन सकता है। रिोगुण की प्रबलता से व्यत्मि अपने को िरीर मान लेता है और स्वयं कताण की तरह व्यिहार करता तथा अनुभि करता है धिसके फल-स्वरूप िह संसार में बंि िाता है। तमोगुण की िृत्मद्ध से व्यत्मि अज्ञानी िि और प्रमादी बन िाता है। ज्ञानी पुरुष िानता है धक इत्मन्द्रयों ंके गुण अन्दर से धक्रया करते हुए बाह्य धिषयों ंके गुणों ंका अनुसरण करते हैं। अतः ऐसे पुरुष उन धिषयों ंसे इत्मन्द्रयों ंको हटा कर उन् अन्तमुणख करते हुए आिा का मनन-धिन्तन करते हैं।

श्रीकृष्ण अिुणन को धिधार, िाणी और कमण से सब-कुछ भगिान् को समपण कर एिं िरीर को ईश्वर का उपकरण मान कर कमण करने की व्यािहाररक युत्मि बतलाते हैं। व्यत्मि यधद अपने कतणव्य-पालन में असफल होता है, तो िह अपना नाि कर लेता है। इत्मन्द्रयों ंका धिषयों ंके प्रधत राग और िेष-दोनों ंअज्ञान से उत्पि होते हैं। हम धििेक और आि-समपण िारा उनसे परे हो सकते हैं। मानि के गुणों ंका धिश्लेषण करते हुए श्रीकृष्ण अिुणन को उनके कतणव्य से धिमुख होने के बदले युद्ध करने का अनुरोि करते हैं। स्विमण-पालन में भय या रुकािटें हों ंतो भी व्यत्मि को अपने कतणव्य का दृढ़ता से पालन करना िाधहए। ऐसा करते हुए कदाधित् मृत्यु भी आ िाये, तो िह भी कल्याणकारक है। स्विमण त्याग कर दूसरों ंका िमण ग्रहण करने पर सम्भि है मान, सत्ता एिं प्रधतिा धमले; पर अन्ततोगत्वा उससे भय, आित्मन्त और दुःख ही उपलब्ध होंगें, इसधलए स्विमण का पालन करना ही श्रेयस्कर है।

अिुणन श्रीकृष्ण से पूछते हैं धक व्यत्मि अपने श्रेय के धिपरीत आिरण क्यों ंकरता है और उसे पाप-कमण करने के धलए कौन प्रेररत करता है? श्रीकृष्ण बतलाते हैं धक व्यत्मि आकांक्षा एिं कामना के कारण अपनी इच्छा के धिरुद्ध पाप-कमण करने को प्रिृत्त होता है। मन, बुत्मद्ध और इत्मन्द्रयों ंमें इच्छा का िास है। िैसे िुएाँ से अधि, िूल से दपण एिं िेर से गभण आच्छाधदत हो िाता है, िैसे ही कामना से ज्ञान बाँक िाता है। मानि सुख खोिता है; पर

रािधसक इच्छा और अज्ञान के कारण िह उसे इत्मन्द्रयों ंािरा प्राप्त करने की िंिा करता है धिसके पररणाम स्वरूप हि पापमय कमण तथा धिनिा की ओर अग्रसर होता है। अप्रधिधक्षत घोंों ंके समान इत्मन्द्रयााँ िरीर-रूपी रथ को कुमागण पर खींी कर ले िाती हैं।

रीर से परे इत्मन्द्रयााँ हैं और इत्मन्द्रयों ंसे परे मन है, मन से परे बुत्मद्ध और बुत्मद्ध से परे आिा है। इस प्रकार समझ कर धक िरीरान्तिाणसी आिा िुद्ध िैतन्य-रूप है और िह (आिा) िरीर, इत्मन्द्रय, मन और बुत्मद्ध से परे तथा कमण से अधलप्त है श्रीकृष्ण कहते हैं धक इत्मन्द्रय, मन और बुत्मद्ध काम के िास-सथान हैं। िे अिुणन को कहते हैं धक मन और बुत्मद्ध का िुद्धिाा के साथ तादात्म्य न करें। उनके मान्यतानुसार कामनाओं ंसे मुत्मि पाने का यही एकमात्र उपाय है। अज्ञान के कारण मनुष्य कामनाओं ंका दास बनता है और धिषयेत्मन्द्रयों ंािरा कामनाएाँ तृप्त करता है; परन्तु िह अन्तराा की सत्यता को पहिानने में असमथण रहता है। योग-सािन के मध्यम मागण के अनुसरण, अन्तधनणरीक्षण िारा धित्तिृधत्तयों ंका दैधनक धिश्लेषण तथा ध्यान के अभ्यास िारा मनुष्य गुरु के मागणदिणन एिं ईश्वर की कृपा से आि-साक्षात्कार कर लेता है।

इस अध्याय में मानि को यह धिक्षा दी गयी है धक कमण धकये धबना िीना असम्भि है। अतः धपछले अध्याय में बताये धनयमानुसार 'योगसथः कुरु' (योगारूढ़ हो कर) कमण करना िाधहए। भगिान् राा िनक का उदाहरण देते हुए उनका अनुसरण करने का उपदेि देते हैं। 'कमण' धिधिधता और धक्रया का क्षेत्र है तथा धिधिधता के क्षेत्र में रह कर भी धदव्यता के साथ एकता-सथापन 'योग' है। ित्मि के मूल-स्रोत का ध्यान रखते हुए कमण करना िाधहए। मन िब इत्मन्द्रयों ंके कारण बधहमुणखी हो िाता है, तब अनेक मानिी समस्याएाँ उठ खड़ी होती हैं। मन सुख की खोि करता है और यही उसका स्वरूप भी है; परन्तु अज्ञान के कारण िह इत्मन्द्रयों ंािरा उस सुख को प्राप्त करना िाहता है और धिषयों ंमें धलप्त हो िाता है। इसके धिपरीत यधद मन अपने मूल स्रोत परम िैतन्य आिा की ओर उन्मुख हो िाये, तो िह अिणणनीय सुख प्राप्त कर सकता है। िंधार (व्यत्मि िैतन्य) रधहत मानि ईश्वर है और व्यत्मि िैतन्य सधहत ईश्वर मानि बन िाता है।

भगिान् हमें सत्त्व, रि और तम-इन तीनों ंगुणों ंसे परे होने का उपदेि देते हैं। िे कहते हैं धक बुत्मद्ध, मन और इत्मन्द्रयों ंकी प्रधक्रयाओं ंसे हमें सदैि सिेत एिं िाग्रत रहना िाधहए। बुत्मद्ध के स्तर तक ही इच्छाओं ंका धनिास है। िब बुत्मद्ध और मन अन्तिैतना के साथ एकरूप हो िाते हैं, तब समुि में धिलीन हुई लहर के समान इच्छाएाँ अपने-आप ही अपना बल खो बैठती हैं।

इस प्रकार यह 'कमणयोग' नामक तृतीय अध्याय समाप्त होता है।

िुथण अध्याय

ज्ञानधिज्ञानयोग

दैधनक िीिन में कमणयोग के आिरण की धिधि एिं धििरण बताने के पश्चात् भगिान् श्रीकृष्ण कहते हैं धक इस अधिनािी योग को मैंने प्रथम सूयण को धसखाया था। तदनन्तर मनु, इक्ष्वाकु आधद सूयणिंि के रािाओं ंको िंि-परम्परा से यह प्राप्त हुआ था। इन रािधषणयों ंने इस योग का अभ्यास कर इसका िन-सािारण में प्रिार धकया। बाद में इन महारधथयों ंके अभाि में कालान्तर में सामान्य िनता में इस योग की महत्ता का क्रमिः हास हुआ था। श्रीकृष्ण को सिणज्ञ होने के कारण भूत, ितणमान और भधिष्य-धत्रकाल का ज्ञान था, िब धक अिुणन अपने िीि-भाि के कारण अपना भूतकाल भूल गये थे। भगिान् श्रीकृष्ण अपने िन्म का रहस्योद्घाटन करते हैं। िे कहते हैं धक

सािु-पुरुषों ंकी रक्षा और दुिों ंका नाि करने एिं प्रकृधत को धनयत्मन्त्रत रखने के धलए योगमाया (दैिी िित्मि) िारा िे अितार लेते हैं। अपने आदिण िारा मानिता के उद्धार के धलए ईश्वर अितररत होते हैं। अिुणन के हृदय की पधित्रता, उनके धिचार, िाणी और कमण के समपण तथा सत्य का साक्षात्कार करने की उनकी उत्कण्ठा देख कर श्रीकृष्ण उन्हें योग का रहस्य समझाते हैं। भगिान् कहते हैं धक िे स्वयं धबना धकसी पक्षपात के मानि िाधत की इच्छा के अनुसार उसकी आिश्यकता को पूरी करते हैं। मानिता के उधिकास की प्रधक्रया में मानि-स्वभाि के स्तर के अनुसार इच्छाओं ंमें धभिता होती है। अतः गुण और कमण के अनुरूप उसके िार िणण बनाये गये हैं। धिनमें
िम, दम, िौि, गाम्भीयण तथा िास्त्र-ज्ञान है और िो दूसरों ंको ज्ञान का उपदेि देते हैं, िे ब्राह्मण कहलाते हैं। ऐसे व्यत्मि सत्त्वगुण-प्रिान होते हैं। िो िौयण, तेि, िैयण, कुिलता, उदारता, प्रभुता आधद गुणों ंसे धिभूधषत होते हैं और धिनमें राज्य करने की क्षमता होती है, िे क्षधत्रय कहलाते हैं। इनमें रिस गुण की प्रिानता होती है। िो लोग कृधष, पिु-पालन तथा िाधणज्य-व्यापार आधद करते हैं और धिनमें रिोगुण के अिीन तमोगुण भी रहता है, िे िैश्य कहलाते हैं और धिनमें तमोगुण की प्रिानता होती है और रिोगुण तमोगुण के अिीनसथ होता है, िे अन्य तीनों ंिणों की सेिा करते हैं तथा िूि कहलाते हैं। भगिान् श्रीकृष्ण कहते हैं धक यधद कोई व्यत्मि अपने फल की अपेक्षा न रखते हुए गुण एिं स्वभाि के अनुसार स्विमण का आिरण करे तो िह ईश्वर को पा सकता है। धिसमें ब्रह्मज्ञान
है, िह ब्राह्मण कहलाता है। कोई भी िणण िंि-परम्परा अथिा िन्मधसद्ध अधिकार नहीं ंहै।

अितार के प्रयोिन तथा इच्छा-धिहीन अत्मस्तत्व का धनरूपण करते हुए श्रीकृष्ण अिुणन को फलेच्छा-रधहत
हो कमण करने का उपदेि देते हैं। कमणयोग िारा सब बन्धनों ंसे मुि हुआ िा सकता है। िे समझाते हैं धक प्रािीन मुमुक्षु पुरुषों ंने इस प्रकार का धनःस्वाथण कमण धकया था; अतः िे अिुणन से इसी भााँधत कमण करने तथा मोह या भय से अपने िमण का त्याग न करने का उपदेि करते हैं।

श्रीकृष्ण कहते हैं धक व्यत्मि को अपना िमण धनधश्चत करना बिा दुष्कर कायण है। अतः स्विमण का पालन
करने के धलए हमें क्या करना िाधहए, क्या नहीं ंकरना िाधहए और धकस प्रकार करना िाधहए, यह िान लेना आिश्यक है। पूिणगामी अध्याय में यह समझाया गया है धक कमण धकये धबना कोई िान्त नहीं ंबैठ सकता। अब यहााँ िे बतलाते हैं धक हमें कमण, अकमण और अकमण में कमण का रहस्य िान लेना िाधहए। िरीर, इत्मन्द्रयााँ, मन और बुत्मद्ध िारा िो धक्रया की िाती है, िह कमण कहलाता है। धनयमानुसार अपने िमाणनुकूल फलािा छोि़ कर मोह, अहन्ता एिं ममता को त्याग कर यधद कोई कमण धकया िाये तो िह कमण में अकमण हो िाता है। ऐसा अनासि कमण करने िाला पुरुष मनुष्यों ंमें सिमुि ज्ञानी तथा योगी है। सामान्य रूप से अकमण का अथण सभी िारीररक धक्रयाएाँ छोि़
देना होता है; पर बाह्य धक्रयाएाँ छोि़ कर नाम और कीधतण के धलए िो त्यागी बनने का ढोंग करता है, िह पाप और बन्धन का भागी होता है। िो कोई िरीर िारा कोई कमण धकये धबना िान्त बैठा रहता है, पर मन से कमण करता रहता है, कामना करता है, िह कमण ही करता है और इसे अकमण में कमण कहते हैं। िो यह भेद समझते हैं, िे अपने प्राप्त िणाणश्रमानुसार कतणव्यों ंको िारीररक दुःख के भय से नहीं ंत्यागते।

िो पुरुष अन्तःकरण में परमािा का धिन्तन करता है और धन स्वाथण भाि से फलािा छोि़ कर संसार की
भलाई के धलए ज्ञानपूिणक कमण करता है, उसे ज्ञानी लोग कमण में अकमण का ज्ञाता एिं पत्मण्डत कहते हैं। इस प्रकार के कमण में अकमण से सभी पाप दग्ध हो िाते हैं। िह िन्म-मरण के बन्धनों ंसे छूट िाता है। िह संसार से धकसी बात की अपेक्षा अथिा इच्छा नहीं ंकरता और सदा सुखी बना रहता है। सभी प्रकार की पररत्मसथधतयों ंमें सम भाि रखता है। िास्त्रों ंमें िधणणत सभी प्रकार के यज्ञ-कमण करता है। ऐसा पुरुष ज्ञानी अथिा ब्रह्म-स्वरूप हो िाता है।

दूसरे अध्याय में श्रीकृष्ण भगिान् ने बतलाया धक आिा अथिा ब्रह्म सिणव्यापक है। िो कोई प्रत्येक कमण में ब्रह्म का अनुभि करता है, िह ब्रह्म को ही कताण, कमण और कमण-फल मानता है। इसे 'ज्ञान-यज्ञ' कहते हैं। श्रीकृष्ण स्वाध्याय, इत्मन्द्रय-धनग्रह, प्राणायाम, दान आधद यज्ञ के धिधिि रूपों ंका िणणन करते हैं। ये सारे यज्ञ-कमण िरीर, मन और इत्मन्द्रयों ंिारा ही सम्पि होते हैं। इन यज्ञों ंको न करने िाला व्यत्मि ऐधहक तथा आध्यात्मिक सुख

को कभी प्राप्त नहीं ंकर सकता। फल की आिा से दान, पधित्र अधि में अममा िार-सधहत घी, िाल आधद हिन-सामग्री की आहुधतयों ंिारा धकये यज्ञाधद से ऐधहक सुख भले ही प्राप्त हो िाये, पर इस प्रकार अज्ञान से धकये गये सकाम-यज्ञ से फलािा-रधहत धकया िाने िाला ज्ञान-यज्ञ श्रेष्ठ है। धिस प्रकार प्रज्वधलत अधि काि-समुदाय को भस्मीभूत कर देती है, उसी प्रकार यह ज्ञानाधन पाप-समूह को धिदग्ध कर िालती है। भगिान् श्रीकृष्ण कहते हैं धक सद्भािना से, धित्त-िुत्मद्ध से, ब्रह्मधनि गुरु की भत्मिपूिणक सेिा से, कमणयोग के सतत दीघणकालीन आिरण से एिं इत्मन्द्रय-धनग्रह से यह ज्ञान प्राप्त होता है।

श्रीकृष्ण कहते हैं धक आिा अथाणत् सत्ता (अन्तरसथ िुद्ध िैतन्य) का भान ही सच्चा ज्ञान है। दीघण काल तक गम्भीर ध्यान का अभ्यास करने से साधक इस िुद्ध िैतन्य का अनुभि कर सकता है। इसके धलए ईश्वर में अपार श्रद्धा, गुरु में धिश्वास, िैयण, समपण की भािना के साथ सांसाररक धिषयों ंसे प्रयिपूिणक इत्मन्द्रयों ंकी धनिृधत्त आिश्यक है। ऐसा होने पर व्यत्मि को परम िात्मन्त का लाभ हो सकता है। अज्ञानी मूढ़ िन इन गुणों ंके अभाि में अपने-आपमें तथा दूसरों ंके प्रधत िंकािील होते हैं और इस लोक तथा परलोक में दु:खी रहते हैं; परन्तु िो लोग कमों का त्याग कर धकसी प्रकार की कामना न रखते हुए सहि भाि से ज्ञानपूिणक ध्यानयोग की सािना करते हैं, उन्हें संसार की कोई िी त्मि बन्धन में नहीं ंिाल सकती। धिसके िारा अिुणन के पूिणिों ंने मानिीय-िीिन का िरम उद्देश्य-परमानन्द प्राप्त धकया था, उसी कमणयोग का अनुसरण करने के धलए श्रीकृष्ण अिुणन को उपदेि देते हैं।

इस अध्याय में भगिान् ने यह बताया है धक व्यत्मि को इस बात का सदा भान रहना िाधहए धक आिा कमण तथा अकमण-दोनों ंही अिसथाओं ंमें असंग तथा अधलप्त रहता है। इस प्रकार समधि (ब्रह्म) तथा व्यधि (िीि) िेतना की त्मसथधत में त्याग अथिा असंग भाि स्वाभाधिक ही रहता है। ब्रह्माण्डीय स्तर की अिसथा में सिणित्मिमान् प्रभु सृधि के सृिन, पालन तथा धिनाि के समय केिल साक्षी-रूप असंग रहते हैं। व्यत्मि में िाग्रधत, स्वप्न तथा सुषुत्मप्त की अिसथाओं ंमें आिा साक्षी रहता है। व्यत्मि की िाग्रत अिसथा में भी िरीर के सभी अंग-प्रत्यंग अपने धलए धकसी भी प्रकार की आिा न रखते हुए कमण करते रहते हैं। उदाहरणाथण पेट भोिन पिाता है, नेत्र िसुतुओं ं को देखते हैं, पैर िलते हैं, हाथ पकड़ते हैं; पर ये सारी धक्रयाएँ धकसी अंग-धििेष के धलए नहीं, ं अधपतु सारे िरीर की सहायता के धलए होती हैं। इस प्रकार त्याग की भािना प्रत्येक स्तर पर एक स्वाभाधिक अिसथा है। िरीर के सभी अंग अन्तरसथ िेतना के धलए कायण करते हैं।

भगिान् कहते हैं धक िो कोई इस प्रकार िाग्रत रह कर कमण करते हुए िीिन धबताता है, िह सभी कमों का सच्चा कताण है और मनुष्यों ंमें ज्ञानी होता है। िह धकसी कमण से बन्धन में नहीं ंपड़ता।

इस अध्याय में मनुष्य को परम सत्य के धिषय में उपत्मसथत िंकाओं ंका समािान सांख्यिास्त्र िारा करने तथा कमणयोग के धसद्धान्त के अनुसार कमण करने का उपदेि धदया गया है। अत: यह अध्याय 'ज्ञानयोग', 'अभ्यासयोग' तथा 'ज्ञानकमणसन्यासयोग' भी कहलाता है।

इस भाँधत 'ज्ञानधिभागयोग' नामक यह ितुथण अध्याय समाप्त होता है।

पंमि अध्याय

कमणसंन्यासयोग

अिुणन श्रीकृष्ण से पूछते हैं धक कमण-संन्यास (सांख्ययोग) और कमण-सम्पादन 'कमणयोग', इन दोनों ंमें मेरे धलए क्ा श्रेयस्कर है। श्रीकृष्ण कहते हैं धक कमण-संन्यास तथा धनष्काम कमण, ये दोनों ंपरमानन्द प्रदान करने िाले हैं। िे यह भी कहते हैं धक कमणयोगी का आिरण अधिक सरल है। कमणयोगी की भािना सदा त्यागमय होती है, क्ोंधक िह अपना कतणव्य असंग भाि से करता है। केिल अज्ञानी ही यह मानता है धक कमणयोग और सांख्ययोग ये दोनों ंधभि हैं।

िास्ति में दोनों ंपरस्पर अधिच्छेद्य हैं। िे दोनों ंएक ही फल देने िाले होते हैं। कमणयोगी की प्रिंसा करते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं धक कमणयोगी असंग भाि के कारण कमल-पत्र पर रहने िाले िल-धबनदु के समान संसार में बन्धन-मुि हो कर िीिन-यापन करता है। सांख्ययोगी आिानन्द में त्मसथत हो कर कमण-संन्यासी बन िाता है और देखना, सुनना, स्पिण करना, सूँघना आधद कमण उसके िारा होते हुए भी उन्ें अपने कमण नहीं ंमानता। अधपतु िरीर, इत्मन्द्रय, प्राण, मन तथा बुत्मद्ध िारा ही ये सब कायण हो रहे हैं और िह केिल इनका साक्षी मात्र है, ऐसा मानता है।

सांख्ययोग का िणणन करते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं धक िीि पुरुष और प्रकृधत का संयोग है। पुरुष (परमािा) न कभी कमण करता है और न कभी धकसी पर कमण करने के धलए दबाि ही िालता है। सब-कुछ प्रकृधत ही करती है। यह पुरुष (ज्ञान) सत्त्व, रि और तम, इन गुणों ंिारा प्रकृधत से आिृत होता है। मनुष्य िब अपने को प्रकृधत अथाणत् िरीर, मन और बुत्मद्ध मान लेता है, तब िह बन्धन में पड़ िाता है और सतत ध्यान िारा िब उसे स्वयं पुरुष अथाणत् परमािा होने का भान होता है, तब िह बन्धन-मुि हो िाता है; उसकी बुत्मद्ध ब्रह्म में लीन हो िाती है और िह अपने को ब्रह्म समझने लगता है। िब बुत्मद्ध ब्रह्म में त्मसथत हो िाती है, तब उसके गौण िरीर, मन और इत्मन्द्रयाँ प्रकृधत के िगत् में बाहर सभी को ब्रह्म-रूप ही देखती हैं। तब उसे कुत्ता, मनुष्य, हाथी, िृक्ष आधद सभी दृश्य एिं अदृश्य िसुतुओं ंमें ब्रह्म ही भाधसत होता है।

कोई व्यत्मि िब िुभ धििारों ंमें संत्मसथत रहता है, तब उसे सिणत्र िुभ ही धदखायी देता है और िह दूसरों ं के प्रधत भलाई का व्यिहार धकया करता है। िह लांछन-मुि होता है और उसके धलए भले-बुरे का भेद समाप्त हो िाता है। धिसे सत्य का ज्ञान होता है, उसमें राग-िेष नहीं ंहोता है। िह ब्रह्ममय बन िाता है। अपने स्वय के व्यिहार-सधहत प्रकृधत के सभी कायों का िह साक्षी मात्र रहता है। उसका मन सदा आिाधभमुख होता है और िह सदा िाश्वत आनन्द का अनुभि धकया करता है। ज्ञानी पुरुष िो यह िानता है कभी भी इत्मन्द्रय-सुख का उपभोग नहीं ंकरता; क्ोंधक उसका आधद और अन्त होता है। अन्ततः उसका पररणाम दुःख ही होता है। िो व्यत्मि इच्छा से समुद्भूत काम और क्रोि को अपने िि में रखता है तथा रिोगुण से सत्त्वगुण में ऊध्वणगमन करता हुआ, िीरे-िीरे मन को ररि कर लेता है, िह योगी कहलाता है। आिा के साथ अनुसन्धान कर ऐसा योगी िरीर-त्याग से पूिण ही िीिनुमुि सन्त बन िाता है। िो योगी अन्तराि के आनन्द में मि रहता है, िह ब्रह्म के साथ ऐक् सथाधपत कर िाश्वत िात्मन्त-प्रदायक ब्रह्म को प्राप्त होता है।

िास्त्र कहते हैं धक परमेश्वर के साक्षात्कार से- िो िगत् का कारण-रूप तथा स्वयं िगत्-स्वरूप ही है- हृदय में अज्ञान की ग्रत्मन्थ धिधथल पड़ िाती है और सारी िंकाओं ंका धनिारण हो िाता है। कमणयोग और सांख्ययोग का धििरण देने के पश्चात् श्रीकृष्ण अिुणन को धिश्वास धदलाते हैं धक ये दोनों ंयोग ईश्वर के साक्षात्कार की

ओर ले िाते हैं। अब िे बतलाते हैं धक कमणयोग और साख्ययोग- इन दोनों ंका सहायक ध्यान-मागण अथाणत् ध्यानयोग है। ध्यानयोग में भृकुधटयों ंके मध्य भाग पर ध्िार केत्मन्द्रत करना प़िता है। श्वासोच्छवास को धनयधमत करना होता है। इसके बाद मन त्मसथर और एकाग्र बन िाता है। एकाग्र मन िारा मनुष्य ईश्वर का सतत अनुसन्धान कर सकता है। इस प्रकार कमणयोग के आिरण से, ध्यान और प्राणायाम िारा मन के धनग्रह से तथा यह िान कर धक अन्ततः ईश्वर सभी यज्ञों ंएिं तपों ंका भोिा है, मरणा–माण मानि अमर बनता है और परम िात्मन्त को प्राप्त होता है। अगले अध्याय में श्रीकृष्ण ध्यानयोग का धिसूतृत ध्िरण देते हैं। िो कोई कमणयोग का आिरण करता है, उसके िारा साख्ययोग, ध्यानयोग, भत्मियोग आधद अन्य आिश्यक योगों ंका आिरण भी सहि हो िाता है। ये धभि-धभि योग परस्पर अभेद्य तथा सहायक होते हैं और व्यत्मि को ईश्वर-साक्षात्कार की ओर प्रेररत करते हैं।

इस अध्याय में बतलाया गया है धक त्याग अथाणत् धनरासि िृधत्त समस्त योगों ंका मूल धसद्धान्त है। त्याग में सभी िीि अनन्त सुख का अनुभि करते हैं। सुषुत्मप्त में िब मनुष्य सब िसुतुओं ंसे सिणथा अधलप्त एिं धनधिणार रहता है, तब िह अमोघ सुख का अनुभि करता है। उस अिसथा में बुत्मद्ध, मन और सभी इत्मन्द्रयााँ अपना व्यापार बन्द कर देती हैं और अनिाने ही आिा के धनकट पहुाँि िाती हैं। उस दिा में रािा, रंक तथा सभी प्राणी सहि भिा से सारे भेदभिों ंको भूल कर तथा अपने कृधत्रम व्यत्मित्व को त्याग कर एक िैतन्य में धिलीन हो िाते हैं। कोई भी व्यत्मि िब िागरूक रह कर इत्मन्द्रय, मन और बुत्मद्ध की धक्रयाओं ंको त्याग देता है, तब िह परमानन्द-रूप िैतन्य के अपने मूल-स्वरूप में लीन हो िाता है। इस प्रकार त्याग अथाणत् िीि-भिा का अभिा परम पूणणता का सािन बन िाता है। त्याग के ज्ञान की यह भव्यता और धदव्यता है। व्यत्मित्व के अधभमान से मुि हो कर कमण करने से व्यत्मि समधि के साथ एकाकार हो िाता है।

इस प्रकार यहााँ 'कमणसंन्यासयोग' नामक पंिम अध्याय समाप्त होता है।

षि अध्याय

ध्यानयोग

इस अध्याय में योगी और संन्यासी दोनों ंकैसे समान हैं, अिुणन की इस िंका का भगिान् समािान करते हैं। भगिान् कहते हैं धक योगी अथिा संन्यासी होने के इच्छुक प्रत्येक व्यत्मि को अपने धनिाणररत कतणव्य का भली-भााँधत पालन करना िाधहए। फल की आिा छो़ि कर अपने कतणव्य का पालन करने िाला योगी बन िाता है और संसार-सिन्धी ध्िारों ंको त्याग कर ईश्वर के अधिरत स्मरण, िास्त्र के अभ्यास, िप, कीतणन और ध्यान से व्यत्मि संन्यासी बन िाता है। इस प्रधक्रया से मन और हृदय पधित्र बन िाते हैं। िब व्यत्मि उच्चतर आिा के प्रभिा में धनम्न िीिाा पर धनयन्त्रण पाता है, तब मन, इत्मन्द्रयााँ और िरीर पर आधिपत्य हो िाता है। तब आिा व्यत्मि का धमत्र बन िाता है और िब ऐसा नहीं ंहोता, तो आिा ही उसका िैरी बन िाता है। अपने िरीर, मन और इत्मन्द्रयों ं
पर अधिकार रखने िाला व्यत्मि सुख-दुख में, सदी-गरमी में एिं मान-अपमान में िान्त रह सकता है। ऐसे व्यत्मि का कोई धमत्र या िैरी नहीं ंहोता और िह स्वणण तथा पाषाण में कोई अन्तर नहीं ंदेखता। पूणणता प्राप्त योगी अथिा सन्त की यह भूधमका (त्मसथधत) होती है। िह सब पदाथों में परमािा को देखता है। आि-धनग्रही और सब इच्छाओं ं से मुि योगी हमेिा अपने मन को ध्यान में धनमि रखता है।

ध्यानयोग की पूिाणपेक्षाओं ंका िणणन करने के पश्चात् श्रीकृष्ण अिुणन को योग के आिरण की रीधत समझाते हैं। कुिा, मृगिमण और िस्त्र को एक पर एक धबछा कर एकान्त स्वच्छ सथान में अपना आसन बनायें, धफर सुकर आसन में बैठ कर िरीर, मस्तक और ग्रीिा को सीिा रखते हुए दोनों ंभृकुधटयों ंके मध्य में ध्यान लगा कर मन एकाग्र करें। आिि–ुत्मद्ध के धलए इत्मन्द्रयों ंको धनयन्त्रण में रखते हुए ध्यान और िैधार करना िाधहए। धनभणय हो कर गम्भीर मन से ब्रह्मियण का पालन करते हुए दोनों ंभृकुधटयों ंके बीि ध्यान के केन्द्र पर भगिान् के
स्वरूप की उपत्मसथधत का धिन्तन करें। इस प्रकार िो भगिान् की उपत्मसथधत का सतत ध्यान करता है, िह परम ित्मिन्त और मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

भगिान् श्रीकृष्ण योगाभ्यास के धलए आिार संधहता बतलाते हैं। सािकों ंको दैधनक व्यिहार में सात्मत्त्वक
आहार, सोने तथा िागने का धनधश्चत समय, यौधगक प्राणायाम, योगासन, सत्संग और स्वाध्याय आधद का धनत्य सेिन कर मध्यम मागण अपनाना िाधहए। उसे िायु-रधहत सथान में प्रधतधित दीपक के समान धनश्चल और अकम्प रह कर मन को ईश्वर में त्मसथर करना िाधहए। िब मन ध्यान िारा धनयत्मन्त्रत हो िाता है, तब िह अन्तरािा का साक्षात्कार कर लेता है। साक्षात्कार के रसास्वाद का अनुभि होने पर उसे प्रतीत होता है धक तीनों ंलोकों ंमें पाने िाली िसुतु अन्य कुछ भी नहीं ंहै। उस अिसथा में संसार का भीषण-से-भीषण दुःख भी उसे िलायमान नहीं ंकर सकता। योग के अभ्यास िारा इस प्रकार का आनन्द प्राप्त धकया िा सकता है। यह िान कर व्यत्मि को िीिीन दृढ़तापूिणक एिं हृदय की दुबणलता को दूर कर योग-सािना करनी िाधहए। सािना िीिीन करने योग्य प्रधक्रया है। प्रधतपल, हर घड़ी ईश्वर-धिन्तन िलता रहना िाधहए। पूिण-संस्कार एिं स्वभाि के कारण मन िब–ब ध्यान से धिषयों ंकी ओर िलायमान होने लगे, तब-तब प्रयासपूिणक उसे ध्यान पर खींिना िाधहए। ध्यान के इस प्रकार के सतत आिरण से ध्यान, ध्यानी और ध्येय एकाकार हो िाते हैं और तब िह व्यत्मि परमानन्द का अनुभि करता है। ऐसा धनग्रही मन िाला योगी आिा को सब िीिों ंमें और सब िीिों ंको आिा में देखने लगता है। भगिान्
श्रीकृष्ण कहते हैं धक 'सबमें मुझे और सबको मुझमें देखने िाला व्यत्मि मुझसे अलग नहीं ंरह सकता और न मैं ही उससे अलग हो सकता हाँ। ऐसा योगी अथिा िीिनुमि पुरुष ईश्वर के हाथ का एक सािन मात्र बन कर रहता है।

समदृधि और मन के सनुतुलन का गुणगान करने िाली श्रीकृष्ण की िाणी सुन कर अिुणन कहते हैं धक 'मन
िंिल, प्रमथन करने िाला, दृढ़ और बलिान् है। िायु के समान उसे िि में करना कधठन है।' अतः अिुणन यह िानना िाहते हैं धक योग सािना में िो व्यत्मि सफल नहीं ंहोता है, उसकी क्ा गधत होती है। क्ा ईश्वर-
साक्षात्कार एिं स्वगीय आनन्द-इन दोनों ंसे िह िंधित रहता है? श्रीकृष्ण कहते हैं धक िैराग्य और अभ्यास से मन को िि में रखा िा सकता है। योग-भ्रि सािक पधित्र एिं समृद्ध व्यत्मि के अथिा योधगयों ंके कुल में िन्म लेता है और मुत्मि के मागण का अनुसरण करने के धलए पुन प्रयिील होता है। श्रीकृष्ण यह भी कहते हैं धक िो उनके भि हैं, िे योधगयों ंमें श्रेि हैं। अतः िे ऐसा योगी बनने का अनुरोि करते हैं धक िो तपत्मस्वयों, ं िास्त्रज्ञों ंऔर याधज्ञकों ंसे भी श्रेि होता है।

इस अध्याय में श्रीकृष्ण भगिान् यह धिक्षा देते हैं धक मानि िाधत के उधिकास के प्रत्येक प्रकार और
प्रत्येक क्षेत्र में ध्यान ईश्वरिैतन्य प्राप्त करने का सािन है। िे यह भी कहते हैं धक ईश्वरिैतन्य की प्रात्मप्त सभी योगों ं का ध्येय है। प्रत्येक योग में अथाणत आध्यात्मिक सािना की प्रत्येक धिधि में मन का ही प्रमुख भाग रहता है। मन को िब पूणण समझ-बूझ के साथ ईश्वर की ओर मोड़ा िाता है, तब मनुष्य का िगत् के प्रधत दृधिकोण, उसकी मनोिृधत्त और इच्छाएँ स्वत बदल िाती हैं। धनराहारी की इत्मन्द्रयााँ धिषयों ंसे धनिृत्त हो िाती हैं, पर उसकी धिषय-लालसा बनी रहती है। परमािा को प्राप्त कर लेने पर यह लालसा भी धनिृत्त हो िाती है। इस भााँधत सतत ध्यान से ईश्वर-
िैतन्य का अनुभि होने पर धिषमता में एकता धदखायी देने लगती है और सभी इच्छाओं ंका अन्त हो िाता है।

इस प्रकार यह 'ध्यानयोग' नामक छठिााँ अध्याय समाप्त होता है।

सप्तम अध्याय

ज्ञानधिज्ञानयोग

धपछले अध्याय में श्रीकृष्ण अिुणन को भियोगी बनने को कहते हैं िो धक अन्य सबसे श्रेरि है। श्रीकृष्ण अिुणन से कहते हैं धक िे अब उन्हें भगिद्-ज्ञान का रहस्य बतलायेंगे धिससे धक व्यत्मि भगिान् के धिभूधत-बल-ऐश्वयण-सधहत पूणण ज्ञान से भत्मि की धिधिध प्रणाधलयों ंका अिोरण तथा अपने मन को भगिान् में धनरन्तर सथाधपत कर सके। इस ज्ञान को प्राप्त करने के पश्चात् अन्य कुछ भी िानने योग्य िेष नहीं ंरहता। भगिान् श्रीकृष्ण कहते हैं धक सहस्रों ंमनुष्यों ंमें कोई एक ही पूणणत्व प्राप्त करने का प्रयि करता है और ऐसे प्रयििील व्यत्मियों ंमें कोई एक ही व्यत्मि मुझे यथाथणतः िान पाता है।

भगिान् प्रथम अपरा (धनम्न कोधट की) और परा (उच्च कोधट की) प्रकृधत का िणणन करते हैं। अपरा प्रकृधत आठ प्रकार की है पृथ्वी, िल, अधि, िायु, आकाि, मन, बुत्मद्ध और अहंकार। परा प्रकृधत िीिन-तत्त्व है धिसके कारण समस्त संसार धटका हुआ है। सभी प्राणी इन दो प्रकृधतयों ंसे उत्पि हुए हैं और उनके सिणन, रक्षण तथा धिनाि का ईश्वर कारण है।

श्रीकृष्ण कहते हैं धक स्वयं ईश्वर ही समस्त सृधि का एकमात्र कारण और परम आिार है। समग्र ब्रह्माण्ड भगिान् की अधभव्यत्मि है तथा भगिान् िारा व्याप्त है। िागे में धपरोयी हुई मधणयों ंके समूह के समान धिश्व ईश्वर में धपरोया हुआ है। भगिान् श्रीकृष्ण कहते हैं-"िल में रस, सूयण और िन्द्र में तेि, समूपूणण िेदों ंमें ओंकार, आकाि में िब्द और मनुष्यों ंमें पौरुष मैं ही हूँ।" िे बतलाते हैं धक िगत् के दृश्य तथा अदृश्य सभी पदाथों में उनका धनिास है और समस्त िगत् का आधद कारण िे ही हैं। माया की आिरण–ित्मि के कारण िगत् उनकी उपत्मसथधत िानने में असमथण रहता है। एकमात्र भगिान् का आश्रय लेने िाला ही इस धदव्य माया से पार हो सकता है। सत्त्व, रि और तम-इन तीन गुणों ंएिं िनों ंसे मोधहत होने के कारण भगिान् मनुष्य को धदखायी नहीं ंदेते। सांसाररक मनुष्य की बुत्मद्ध पर माया का आिरण िढ़ा रहता है। प्रकृधत के तीनों ंगुण िब एकत्र हो िाते हैं, तब माया का आिरण होता है। माया के कारण धिनका ज्ञान नि हो िाता है, ऐसे अज्ञानी मनुष्य भगिद्-भत्मि करना भूल िाते हैं। िे मानते हैं धक यह िगत् और दृष्य पदाथण ही सत्य हैं। िे असुरों ंिैसा व्यिहार करते हैं और िन्म-मरण के िक्र में घूमते हुए दुख में िूबे रहते हैं।

आतण, धिज्ञासु, अथाणथी और ज्ञानी-ऐसे िार प्रकार के गुणिान् व्यत्मि ईश्वर की भत्मि करते हैं। इसमें एकाग्र मन से भत्मि करने िाले ज्ञानी मनुष्य भगिान् को अधिक धप्रय हैं। अनेक िन्म-मृतुयु और दुःखों ंके पश्चात् मनुष्य को यह प्रतीत होता है धक िाश्वत श्रीकृष्ण भगिान् अथाणत् परमािा ही सत्य हैं। ऐसे व्यत्मि संसार में दुलणभ हैं।

धिनकी बुत्मद्ध अनेक इच्छाओं, ं िासनाओं ंसे प्रेररत है, ऐसे लोग अपनी प्रकृधत के अनुसार अन्य देिी-देिताओं ंकी उपासना करते हैं और िास्त्रोि धिधियों ंको अपनाते हैं। िास्ति में सभी देिी-देिता एक ही परमािा के धिधिध रूप हैं। व्यत्मि अपने स्वभाि, श्रद्धा और िीिन के आदिण के अनुसार अपनी भत्मि का फल

प्राप्त करते हैं। ऐसे अल्प ज्ञानी लोगों ंिारा प्राप्त पररणाम (फल) सीधमत, सान्त होता है; क्ोंधक ि ईश्वर की सिण-व्यापकता को भूल कर अपने सीधमत ज्ञान से ही धिधिध दिेता की उपासना करते हैं। दिेता अथिा इिदेि तो मन को एकाग्र करने का एक सिान मात्र है। उसे ही साध्य नहीं ंमान बैठना िाधहए। मनुष्य को एकाग्र मन से इि–सुतु का अधिरत ध्यान करना िाधहए। इससे िीरे–िीरे धिािरों ंका धिराम हो कर िह परमाेिा का, सिणव्यापक िैतन्य का अनुभि कर सकेगा। इस िैतन्य भाि में सभी प्रकार के नाम, रूप तथा व्यत्मित्व का धिलय हो िाता है और केिल सिसुतु की सत्ता िेष रहती है। िीि का अज्ञान दूर करने के धलए, मानि को दिेता, नर को नारायण बनाने के धलए और िीिाेिा को अपनी मूल-प्रकृधत अथाणत् पूणणता प्राप्त कराने के धलए भगिान् अनेक नाम-रूपों ंसे गित् में प्रकट होते हैं।

भगिान् श्रीकृष्ण अिुणन से कहते हैं धक ि भूत, ितणमान और भधिष्य के सभी प्राधणयों ंके धिषय में िानते हैं; पर उन्ें कोई भी नहीं ंिानता। रागि–ेष, सुख-दुख, गरमी-सदी, आनन्द-धिषाद, हषण-िोक, िय-पराि, मान-अपमान आधद इच्छाओं ंऔर घृणा से उत्पि िनों ंके कारण सभी िीि माया में फँसे हुए हैं। ि ईश्वर के सिणव्यापी अत्मस्तत्व को भूल कर िन्म-मरण के दु:खों ंको भोगते रहते हैं। िो ईश्वर को समूपूणण रूप से समधपणत हो िाता है, िह ब्रह्म, अध्याेि, कमण, अधिभूत, अधिदेि एिं अधियज्ञाधद का यथाथण ज्ञान प्राप्त कर लेता है। अगले अध्याय में भगिान् श्रीकृष्ण इनकी धिसूतृत व्याख्या करेंगे।

िो मनुष्य अपने िीिन-भर भगिान् का स्मरण नहीं ंकरता, िह अपने मृतुयु-समय में भी भगिान् का नाम-स्मरण नहीं ंकर सकता। यधद कोई व्यत्मि केिल मृतुयु-समय में भी भगिान् के नाम का िप अथिा उनके धदव्य स्वरूप का धिन्तन करता है तो सिोच्च अधिनािी, परमाेि-स्वरूप को प्राप्त हो िाता है; परनुतु िो मनुष्य िीिन-भर ईश्वर का नाम नहीं ंलेता, िह मृतुयु के समय उनका स्मरण कर सकेगा, यह कधठन है।

इस अध्याय में यह बतलाया गया है धक सत्त्व, रि और तम-इन तीनों ंगुणों ंके कायण में ईश्वर कारणीभूत है। अज्ञान के कारण मनुष्य मोहान्ध बन िाता है और अपने-आपको इन तीनों ंगुणों ंका पररणाम-मन, इत्मन्द्रय और िरीर मानता है। समस्त संसार तीनों ंगुणों ंके अन्योन्य व्यिहार पर धटका हुआ और संिाधलत है। ईश्वर ने मनुष्य को धििेकि–त्मि प्रदान की है धिसके िारा िह तीनों ंगुणों ंसे परे हो कर उनके कारण-रूप ईश्वर का साक्षात्कार कर सकता है।
भगिान् श्रीकृष्ण कहते हैं धक प्रकृधत के धकसी भी पररणाम अथाणत् मन, इत्मन्द्रयों ंऔर िरीर के साथ अपना तादात्म्य न मान कर भत्मि िारा व्यत्मि ईश्वर के साथ सायुज्य-मुत्मि प्राप्त कर सकता है। माला की मधणयों ं के आिार–िागे के रूप में परम िेतन-तत्त्व िगत् में कायण कर रहा है, इस बात का सािक को सतत ध्यान रखना िाधहए। व्यत्मि के सभी अंग एक ही िेतना िारा संिाधलत तथा परस्पर सिद्ध हैं। इसी प्रकार समस्त धिश्व सिणव्यापी ईश्वर के िैतन्य के कारण धटका हुआ है। भगिान् कहते हैं धक महत्तम िेतना की उपलत्मब्ध प्रत्ेयेक व्यत्मि अपने स्वभाि के अनुसार धकसी भी सािन िारा कर सकता है और ईश्वर में धिलीन हो कर परमानन्द की प्रात्मप्त कर सकता है। िो यह िानते हैं धक िन्म-मृतुयु, िृद्धािसथा और अनेक व्याधियों ंसे दु:ख उत्पि होते हैं, यह भी अनुभि करते हैं धक सिोच्च ध्ेयेय तथा मानि की सभी प्रिृधत्तयों ंका पयणिसान केिल ईश्वर ही है, और श्रद्धा तथा ज्ञानपूिणक आिरण करते हैं, ि उस परम तत्त्व को पा लेते हैं और धफर उनका पुनिणन्म नहीं ंहोता।

इस प्रकार यह 'ज्ञानधिज्ञानयोग' नामक सप्तम अध्याय समाप्त होता है।

अिम अध्याय

अक्षरब्रह्मयोग

परमािा के सभी धदव्य रूपों ंकी धिधिधताओं ंको िानने की इच्छा से अिुणन ने धपछले अध्याय में बतायी गयी तत्त्वज्ञान की पाररभाधषक व्याख्याओं ंपर प्रकाि िालने की श्रीकृष्ण भगिान् से प्राथणना की है। उन्होंने सात प्रश्न पूछे हैं "ब्रह्म, अध्याि, कमण, अधिभूत, अधिदैि एिं अधियज्ञ क्या हैं और मृत्यु के समय समाधहत-धित्त पुरुष आपको धकस प्रकार िान सकता है?"

श्रीकृष्ण उत्तर देते हैं धक परम और अधिनािी तत्त्व को ब्रह्म कहते हैं। ब्रह्म अक्षर, अधिकारी, सिणव्यापक, स्वयंभू, स्वयंप्रकाि और सभी घटनाओं ंका परम कारण है। उस ब्रह्म का प्रत्यगािाभाि अथाि िीि–िैतन्य अध्याि कहलाता है। देि, काल, नाम और रूप से बाधित परम िैतन्य ही अध्याि है। िगत् की िीि-सृधि तथा िीिािा का अत्मस्तत्व, व्यिता एिं त्मसथधत की कारणभूत ित्मि को कमण कहते हैं। धिस ित्मि के कारण ईश्वर एक से अनेक रूप िारण करता है, िही यह ित्मि है। सभी क्षर िस्तुएँ अथाणत् सृधि के पााँि तत्त्वों ंसे बनी हुई सभी िस्तुएँ, आधद और अन्त िाले सभी पदाथण, बुत्मद्ध, मन, इत्मन्द्रयााँ और िरीर अधिभूत कहलाते हैं। धिश्वािा अथाि धदव्य प्रज्ञा देि-रूप है, िो उसके अंि हैं। ईश्वर सबका धनयामक, स्वामी और िन्मदाता है। िह आधद-पुरुष एिं सूत्रािा है। समस्त धिश्व के प्रत्येक िर और अिर पदाथों की प्राण–त्मि िही है। इसी से िह अधिदैि कहलाता है। सभी यज्ञों ंका अधििाता देि एिं िरीर में अन्तयाणमी रूप से त्मसथत िरीर का िैतन्य साक्षी होने के कारण िह अधियज्ञ कहलाता है।

अिुणन के अत्मन्तम प्रश्न का समािान करते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं धक ईश्वर को स्मरण करता हुआ ि रीर त्याग करने िािा ईश्वर को ही प्राप्त हो िाता है। मनुष्य का आगामी िन्म उसके मृत्युु के समय के अत्मन्तम धििारों ंके अनुसार होता है। िीि मृत्युु-समय में धिस िस्तुु का धििार करता है, िही िस्तुु उसे अगले िन्म में प्राप्त होती है। भूतकाल के अथाणत् पूिणिन्म के अपने धििारों ंएिं इच्छाओं ंके अनुसार ही हमारा ितणमान िन्म और िीिन प्राप्त हुआ है और अब ितणमान िीिन में दृढ हुए धििारों ंके अनुसार ही अगला िन्म धनधश्चत होगा। िास्त्र कहते हैं धक मृत्युु समय मन और प्राण-सधहत िासनािो सूक्ष्म देह या िीि कहलाता है-भौधतक िरीर को त्यागते हैं।

िीि का सथूल िरीर से धियोग ही मृत्युु है। इस िरीर को अत्मस्तत्व में लाने िाला संिग बन्द होता है, तब मृत्युु होती है; परन्तुु ऐसा कब होगा, यह कोई नहीं ंिानता और इसीधलए मृत्युु के अत्मन्तम क्षण की धकसी को खबर नहीं ंहोती।

इसीधलए भगिान् श्रीकृष्ण कहते हैं धक व्यत्मि को सदा ईश्वर का स्मरण करना िाधहए। ऐसा करने पर ही िह अत्मन्तम समय में ईश्वर का स्मरण कर सकेगा। 'िब मन और बुत्मद्ध मुझमें लीन होगी, तब तुम धनस्सन्देह मुझे प्राप्त कर सकोगे।' भगिान् श्रीकृष्ण प्रधतक्षण योगाभ्यास की आिश्यकता पर िोर देते हैं। यधद कोई व्यत्मि मन को ईश्वर में त्मसथत कर िीिन ध्यान करता है तो अन्त समय में भी ईश्वरिैतन्य अथिा ईश्वर-धििार उसमें अिश्य त्मसथत रहेगा और िह सांसाररक धिषयों ंमें कभी आसि नहीं ंहोगा। अतः हर व्यत्मि को िीि, सिणज्ञ, सिाणिार, सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतर, सूयण, िन्द्र और ताराओं ंके प्रकाि का उद्गम सथान एिं अज्ञानान्धकार को दूर करने िाले परब्रह्म परमात्मा का हमेिा ध्यान करना िाधहए।

सामान्यतः प्रत्येेक व्यत्मि िारीररक, प्राधणक एिं मानधसक स्तरों ंपर व्यत्मित्व में सामंिस्य न होने के कारण अपने अत्मस्तत्व के आिार को भूल िाता है और दुःखी होता है। िैसे सरीर के धिकुषुब्ध िल के कारण उसके तल में पड़े हुए कंकड़ धदखायी नहीं ंदेते और िल में सूयण का प्रधतधबि भी नहीं ंधदखायी देता, िैसे ही इस धिसािधदता के कारण आत्मा में उसके अन्तगणत व्यत्मित्व का भान नहीं ंहोता। यहााँ भगिान् श्रीकृष्ण अिुणन को एक ऐसी युत्मि बतलाते हैं धिसके अभ्यास से व्यत्मि अपने में आिश्यक सुसंगतता ला कर ईश्वरिैतन्य पा सकता है।

श्रीकृष्ण कहते हैं धक व्यत्मि को दोनों ंभृकुधटयों ंके मध्य में मन को एकाग्र कर ॐ के िप के साथ प्राणायाम करना िाधहए। प्राणायाम के धलए मेरुदण्ड और गरदन को सीिा रख कर सुखपूिणक आसन पर बैठना िाधहए। ऐसा करने से िारीररक अंगों ंमें सुसंगतता प्राप्त होती है और िरीर के सभी अंगों ंमें प्राण का धनयधमत संिार होता है। िाग्रत अिसथा में मन का सथान आज्ञािक्र अथाणत् दोनों ंभृकुधटयों ंके बीि का सथान है। व्यत्मि िब इस सथान पर ध्यान केत्मन्द्रत करता है, तब इत्मन्द्रयााँ और मन िान्त हो िाते हैं। 'ॐ' के िप से नाड़ी-तन्त्र में सुमेल हो िाता है और सािक का समग्र व्यत्मित्व एक ही िैतन्य का अनुभि करने लगता है और िीरे-िीरे उसे परम िैतन्य का साक्षात्कार होने लगता है। ऐसा योगी िो योगाभ्यास िारा इत्मन्द्रय-धनग्रह करता है, प्राणायाम करता है, ईश्वर का ध्यान करता है, मृत्युु-समय में भी ब्रह्म के िािक अथिा प्रतीक 'ॐ' का िप करता रहता है। िह परम श्रेष्ठ गधत को प्राप्त कर लेता है, िहााँ से उसे पुनः इस मत्यणलोक में लौट कर नहीं ंआना पड़ता। इसका भािाथण यह है धक ध्यान के धनत्य अभ्यास िारा व्यत्मि को ईश्वरिैतन्य में सदा संत्मसथत रहना िाधहए। ऐसा होने पर ही मृत्युु-समय में धदव्य िैतन्य को प्राप्त करना सम्भि हो सकेगा। मत्यणलोक दुःख का सथान और अधनत्य अथाणत् धिनािील है। ईश्वरिैतन्य प्राप्त करने िाले परम गधत (मोक्ष) को प्राप्त कर लेते हैं।

रिोगुण-प्रिान धिश्वधििाता ब्रह्मा कहलाते हैं। सत्त्वगुण-प्रिान धिश्व का िारण और पोषण करने िाले धिष्णुु और तमोगुण-प्रिान धिश्वसंहारक रुद्र अथाणत् िंकर कहलाते हैं। ८,६४,००,००,००० मानिीय िषण से ब्रह्मा का एक धदन होता है। ऐसे सौ िषण का ब्रह्मा का िीिन है। यज्ञ और सत्कमों से व्यत्मि ब्रह्मलोक में पहुाँिता है; पर िह

भी दिे, काल और कतृणत्व के बन्धन से प्रधतबत्मन्धत है। दीघण काल तक सत्कमों का फल भोगने के पश्चात् िीि पुनः इस संसार में िन्म लेता है।
भगिान् श्रीकृष्ण कहते हैं "िो मनस्वी एक हिार युग से बना हुआ ब्रह्मा का एक धदन और एक हिार युग की उनकी एक राधत्र को िानते हैं, िे रात और धदन का रहस्य समझते हैं। धदन धनकलते ही धिश्व की सभी िसुतुएँ अव्यि से व्यि में प्रकट होती हैं और रात होते ही अथाणत् प्रलय के समय िे सब पुनः अव्यि में ही धिलीन हो िाती हैं। इस प्रकार ब्रह्मा के धदन और रात के बीि अनन्त िीि िन्म लेते और मरते हैं, पर केिल ईश्वर ही इन सबका िाश्वत साक्षी-रूप एिं अधलप्त रहता है। अतः िो व्यत्मि मृतुयु-समय में परमािा को िाश्वत साक्षी-रूप में स्मरण करता है, िह पुनः िन्म नहीं ंलेता और दिे, काल तथा कारण से परे परम तत्त्व में धिलीन हो िाता है।"

मृतुयु-समय में योगी िन ईश्वर की अनुभूधत धकस प्रकार करते हैं, इसके धिषय में श्रीकृष्ण अिुणन को समझाते हैं। ईश्वर-साक्षात्कार के धबना कोई भी व्यत्मि िन्म-मरण के िक्र से नहीं ंछूट सकता। ब्रह्मा के लोक तक पहुाँि कर भी िह िन्म-मरण के फेरे नहीं ंटाल सकता। अतः योग-सािना करने िाले साधक धिन दो मागों से मरणोपरान्त प्रयाण करते हैं और िापस लौटते हैं, उनके सम्बन्ध में श्रीकृष्ण िणणन करते हैं।

िब अधि, तेि और धदिस के अधभमानी दिेताओं ंका आधिपत्य होता है, िब िुक्ल पक्ष होता है और सूयण का छह मास का उत्तरायण काल होता है, उस समय िरीर त्यागने िाले योगी प्रथम ब्रह्मलोक में िाते हैं और पश्चात् परमािा में धिलीन हो िाते हैं। िे पुनः संसार में िापस नहीं ंआते। इसे 'क्रम-मुत्मि' अथिा 'उत्तर-मागण' या 'दिेयान' कहा िाता है। िो अज्ञानी, सांसाररक धिषयों ंमें आसि, फलािा से यज्ञ करने िाले िब िून एिं राधत्र के अधभमानी दिेताओं ंका आधिपत्य होता है, कृष्ण पक्ष होता है तथा िो िब सूयण की गधत छह मास के धलए दधक्षण की ओर (दधक्षणायन) होती है तब मरते हैं, िे िन्द्रलोक को (धपतरों ंके स्वगण को) प्राप्त होते हैं। िे अपने सत्कमों का फल भोगने के पश्चात् पुनः इस लोक में िापस लौटते हैं। इसे प्रकाि-हीन मागण अथाणत् 'दधक्षण-मागण' या 'धपतृयान' कहते हैं।

श्रीकृष्ण अिुणन को बतलाते हैं धक योग-मागण पर िलने िाले मुमुकुषु इन दो मागों को िानते हैं और इसधलए फल की आिा से कभी यज्ञ, िास्त्राध्ययन या दान आधद नहीं ंकरते; क्योंधक िे िानते हैं धक ईश्वर के अधतररि सभी कुछ दु:खदायी और क्षधणक है। अतएि िे हमेिा ईश्वर-िैतन्य तथा ईश्वरानुसन्धान में ही िूबे रहते हैं और अन्त में सिोत्कृष्ट कारण-रूप परम पद को प्राप्त करते हैं।

इस अध्याय में श्रीकृष्ण मानि िीिन के महत्त्व का िणणन करते हैं। िास्त्र कहते हैं धक िौरासी लाख मानिेतर योधनयों ंको पार करने के बाद िीि भगिद्-कृपा से मनुष्य-िन्म पाता है। अतः श्रीकृष्ण िेतािनी देते हुए कहते हैं धक इस मानि-िन्म में यधद व्यत्मि ईश्वर-प्रात्मप्त के अलभ्य अिसर का लाभ न ले और मोह, लोभ तथा ईष्याण िैसे पािी तत्त्वों ंके बीि अपना सारा िीिन व्यतीत करता रहे तो उसे मृतुयु-समय में ईश्वर का स्मरण नहीं ं हो सकता। उसे मरणोत्तर पुनः मानिेतर योधनयों ंमें िन्म लेना पड़ता है। अतः भगिान् योग और ध्यान के अभ्यास पर िोर देते हैं, धिससे धक व्यत्मि मृतुयु-समय में सांसाररक िंिाल का धिन्तन करने के बदले केिल ईश-धिन्तन में ही मि रहे।

इस प्रकार 'अक्षरब्रह्मयोग' नामक यह अिम अध्याय समाप्त होता है।

निम अध्याय

रािधद्यारािगुह्ययोग

श्रीकृष्ण भिगान् अिुणन को श्रद्धिाान्; दोष-दृधि-रधहत एिं पधित्र धदव्य ज्ञान का पात्र समझ कर उनसे कहते हैं धक अब मैं तुम्हें प्रत्यक्ष फलप्रद रािधिद्या (सब धिद्याओं ंका रािा) एिं रािगुह्य (सब गुप्त रखने योग्य भािों ंका रािा) बतलाऊाँगा। िे कहते हैं-"यह धिद्या अधिनािी है और इसे िान लेने पर व्यत्मि दुःख-रूप संसार से मुि हो िाता है।" भिगान् कहते हैं धक इस ज्ञान में-उसके व्यि-अव्यि रूप में श्रद्धा के अभाि से लोग ईश्वर-प्रात्मप्त में असफल होते हैं और संसार में दुःख भोगते हैं।

भगिान् कहते हैं धक यह समस्त िगत् उनसे व्याप्त है और िैसे सदा ही आकाि में त्मसथत रहने िाली सिणत्र गमनीील तथा महान् िायु का आकाि से सम्पकण नहीं ंहोता है िैसे ही ये सब प्राणी उनमें त्मसथत हैं। िे धिश्व के सिणक, पालक और संहारक होते हुए भी इन सब धक्रयाओं ंसे उदासीन तथा असंग रह कर केिल साक्षी-रूप हैं। धिन्हें ईश्वर के स्वरूप का ज्ञान नहीं ंहै, ऐसे अज्ञानी लोग उनको प्रकृधत का स्वरूप मानते हैं और िमण की रक्षा के धलए िब िे अितार लेते हैं; तब उन्हें मरणा–माण मनुष्य के समान समझते हैं। ऐसे व्यत्मि धिश्व में धिश्वनाथ का दिणन नहीं ंकर पाते और िरीर में रहने िाले आिा के धिषय में उन्हें कुछ भी ज्ञान नहीं ंहोता। िे धिश्व की धिधिधिता में एकता नहीं ंदेखते। लहरों ंके नीचे िाले समुि को िे भूल िाते हैं। क्षणभंगुर धिषयों ंके पीछे भागते हुए िे िाश्वित सत्य को िूक िाते हैं। उन्हें सारासार धििेक नहीं ंहोता। कुछ सािक ज्ञान-यज्ञ के िारा भगिान् की उपासना करते हैं। कुछ सत्य के ज्ञाता ज्ञानी िन परमाथण-दिणन-रूप अभेद भािना से उपासना करते हैं। धकतने ही सािक पृथक् भािना से उपासना करते हैं, धकतने ही सािक धनराकार ईश्वर को सिणरूप परमेश्वर के रूप की अनेक प्रकार से उपासना करते हैं तथा धकतने ही सािक सिणदा कीतणन करते हुए भगिान् को भिते हैं।

श्रीकृष्ण भगिान् अपने सािणि-भि का धदग्दिणन कराते हैं। िे कहते हैं धक िे इस िगत् के माता-धपता तथा धपतामह हैं। िे ही कमण-फल का धििान करने िाले हैं। िानने योग्य तत्त्व ओंकार तथा ऋग्वेद, यिुिेद और सामिेद हैं। िे ही औषधि तथा सब प्रकार की िनस्पधत हैं। िे ही पुिारी और पूज्य दोनों ंहैं। िे सूयण में से उष्णता को धबखेर कर िषाण करते हैं। िे ही सत् तथा असत्, अमरत्व और मृत्युु सब-कुछ हैं। सूयण, िन्द्र और अधि के समान देिता उनके िरीर के ही अंग हैं। िे कहते हैं धक िे ही हिन हैं और िे ही हिन-सामग्री हैं। पुण्य-संिय के कारण गुणी िन भगिान् के व्यि-स्वरूप को भिते हैं। ऐसे भि स्वगण में सुखों ंका उपभोग करने के बाद पुण्य-क्षय होने पर पुनः मत्यणलोक में लौट कर आते हैं।

िो भि गण अन्य कोई कामना न रखते हुए भगिान् का ही अनन्य भाि से धनत्य स्मरण करते तथा उनसे प्रेम करते हैं, उनकी भगिान् पूणण रूप से रक्षा करते हैं और उनकी सभी आिश्यकताओं ंकी पूधतण करते हैं। अज्ञान के कारण िो लोग अन्य देिी-देिताओं ंकी उपासना करते हैं, िे भी उनकी ही पूिा करते हैं। िे नहीं ंिानते धक मैं ही समस्त यज्ञों ंका भोिा और स्वामी हाँ। इसधलए ऐसे कामना िाले भि स्वगण-सुख पाने के बाद पुन मृत्युुलोक में िापस आते हैं। िो भि धनष्काम भाि से ईश्वर की भत्मि करते हैं, िे ईश्वर को प्राप्त कर लेते हैं। भि को तो केिल भत्मि ही प्यारी होती है। िह अन्य धकसी िस्तु या सम्पदा की इच्छा नहीं ंकरता। िो भि भगिान् को पत्र, पुष्प, फल और िल मात्र भी भत्मिपूिणक अपण करता है, िे ऐसे भि से उसे स्वीकार कर लेते हैं। भि िारा अपण की गयी िस्तु की गुणित्ता या मूल्य को भगिान् नहीं ंदेखते। िे तो केिल भि की भािना और भत्मि को देखते हैं।

अत्यन्त दुरािारी व्यत्मि भी यधद अनन्य भत्मि से ईश्वर की उपासना करता है, तो िह भी सािु िृधत्त िाला माना िाता है; क्ोंधक िह यथाथण धनश्चय िाला है। श्रीकृष्णण अिुणन को यह दृढ़ धिश्वास धदलाते हैं धक िो भि पूणण हृदय से अपनी आिा मुझे समधपणत करता है, उसका कभी धिनाि नहीं ंहोता। िे कहते हैं धक खाना, पीना, पढ़ना, तप करना, दान करना आधद िो भी कमण तुम दैधनक िीिन में करो, िह धन स्वाथण भाि से मुझे अपण करो। धनकृि न्मि िाला मनुष्य भी यधद मेरी िरण में आ िाता है तो िह परम गधत को प्राप्त कर लेता है। केिल राधषण, ब्राह्मण आधद ही नहीं ंअधपतु त्मस्त्रयाँ, िैश्य तथा िूि भी मेरे परम पद को प्राप्त कर सकते हैं। इसधलए हे अिुणन ! मुझमें अपने मन को त्मसथर कर, मेरा भि बन, मेरे धलए ही यज्ञ कर, मुझे ही नमस्कार कर। इस प्रकार मेरे में एकीभाि करके मेरे परायण हुआ तू मुझे ही प्राप्त होगा।

इस अध्याय में भगिान् प्रत्येक कमण ईश्वर को समपण भािना से करने का उपदेि देते हैं। इस प्रकार धकया गया प्रत्येक कायण भत्मि का प्रतीक बन िाता है और ईश्वर का सतत स्मरण रखने में सहायक होता है।

भगिान् को धकसी सांसाररक पदाथण की आिश्यकता नहीं ंहै। िे स्पि कहते हैं धक उन्हीं ंमें सारा िगत् समाया हुआ है, परन्तु िे स्वयं उसमें त्मसथत नहीं ंहैं। लहरें समिु में हैं; परन्तु समिु लहरों ंमें समाया हुआ नहीं ंहै। इस अध्याय में भगिान् एक गुप्त बात प्रकट करते हैं। उनसे पृथक् धकसी िसुतु की सत्ता नहीं ंहै। िे ही धिश्व में व्यि और अव्यि सत्य हैं। िीिन की प्रत्येक अिसथा में और त्मसथधत में इस सत्य एिं अत्मस्तत्व के रहस्य का धिन्हें भान है, िे धनश्चय ही ईश्वर को प्राप्त होते हैं।

इस प्रकार 'राधिद्या' एिं 'रािगुह्ययोग' नामक निााँ अध्याय समाप्त होता है।

दिम अध्याय

धिभूधतयोग

परमेश्वर के सबसे गुह्य गुणों,ं धिभूधतयों ंऔर सत्य स्वरूप के धिषय में अिुणन की धिज्ञासा देख कर भगिान् श्रीकृष्ण अिुणन के साथ-साथ समूपूणण मानि–िाधत के धहत और कल्याण के धलए यह गुह्य ज्ञान प्रेेमपूिणक अिुणन को सुनाते हैं। िे अिुणन से कहते हैं धक िे स्वयं सबके आधद कारण हैं। अतएि देिता और ऋधष गण भी उनकी उत्पधत्त (प्रभि) को नहीं ंिानते हैं। िो व्यत्मि यह िानता है धक भगिान् अिन्मा, अनाधद एिं लोकों ंके महान् ईश्वर हैं, िह मनुष्यों ंमें मोह-रधहत हो समस्त पापों ंसे मुि हो िाता है। िीिों ंके धिधभि भाि यथा बुत्मद्ध, अिज्ञान, अमूढ़ता, क्षमा, सहनीलता, सत्य- भाषण, दम, िम, सुख, दुःख, िन्म, मृतुयु, भय एिं धनभणयता-ये सब ईश्वर से ही होते हैं। मेरे ही प्रभाि से सम्पि सात महधषण िन, उनसे भी पूिण के िार सनकाधद महधषण, मनु आधद सब मेरे (भगिान् के) ही संकल्प से उत्पि हुए हैं और उनसे ही संसार के समस्त प्राणी िन्म प्राप्त धकये हैं। िो कोई भगिान् की इन अनेक धिभूधतयों ंऔर योग–त्मियों ंको तत्त्व से िानता है, िह धनःसन्देह योग में त्मसथत हो िाता है। भगिान् ही समूपूणण िगत् की उत्पधत्त के कारण हैं और उनसे यह समस्त िगत् प्रिधतणत हो रहा है। इस प्रकार िान कर धीिेकी िन उनकी भत्मिपूिणक पूिा करते हैं, उनकी िािण करते हैं, उन्हें आि-समपण करते हैं, उनका ध्यान िरते हैं और उन्हीं ंमें आनन्द को प्राप्त होते हैं। भगिान् श्रीकृष्ण कहते हैं धक िो उन्हें प्रेेमपूिणक भिते हैं, उन्हें िे बुत्मद्धयोग प्रदान करते हैं धिसके िारा िे उन्हें (भगिान् को) प्राप्त होते हैं। श्रीकृष्ण यह भी कहते हैं धक उन पर अनुग्रह करने हेतु भगिान् उनके अन्तःकरण में धिरिा कर अज्ञान-रूपी अन्धकार को प्रकािमान ज्ञान-रूपी दीपक से नाि करते हैं।

श्रीकृष्ण की इन बातों ंको सुन कर अिुणन प्रश्न करते हैं धक 'नारद, अधसत, देिल और व्यास िैसे ऋधषयों ंने भी यही बात कही है। आपने िो कुछ कहा, उसे मैं सत्य मानता हाँ। देि अथिा दानि आपके स्वरूप को नहीं ंिानते। आप स्वयं ही अपने-आपको िानते हैं। आप ही अपनी उन धदव्य धिभूधतयों ंका िणणन करने में समथण हैं धिनके िारा इन सब लोकों ंको व्याप्त कर आप त्मसथत हैं। हे योगेश्वर, मैं धकस प्रकार धिन्तन करता हुआ आपको िान सकता हाँ, कृपया यह बतलाइए। धकन-धकन पदाथों अथिा भािों ंमें मैं आपका धिन्तन करूाँ? हे कृष्ण, अपने ऐश्वयण तथा धिभूधतयों ंको मुझे पुनः सुनाइए। आपके अमृतमय ििनों ंको सुनते हुए मेरी तृत्मप्त नहीं ंहोती है।'

तब भगिान् श्रीकृष्ण कहते हैं - "मैं सब प्राधणयों ंके हृदय में त्मसथत सबका आिा हाँ। समस्ज िीिों ंका आधद, मध्य और अन्त मैं ही हाँ। अधदधत के बारह पुत्रों ंमें धिषुणु मैं हाँ। ज्योधतयों ंमें रत्मियों ंसे युि सूयण मैं हाँ। (सात

या उनिास) मरुद्गणों ंमें मरीधि मैं हाँ। नक्षत्रों ंमें िन्द्रमा मैं हाँ। िेदों ंमें सामिेद, देिों ंमें इन्द्र, इत्मन्द्रयों ंमें मन और
भूत प्राधणयों ंमें िेतना मैं ही हाँ। एकादि रुद्रों ंमें िंकर मैं हाँ। यक्ष और राक्षसों ंमें िन का स्वामी कुिेर मैं हाँ। आठ
िसुओं ंमें अधि देिता मैं हाँ। पिणतों ंमें मेरु मैं हाँ। पुरोधहतों ंमें उनका मुख्य पुरोधहत बृहस्पधत मैं हाँ। सेनानायकों में
स्कन्द मैं हाँ और िलाियों ंमें समुद्र मैं हाँ। महधषणयों ंमें भृगु मैं हाँ। िाणी में एकाक्षर ओंकार मैं हाँ। यज्ञों ंमें िप-यज्ञ मैं
हाँ और सथािरों ंमें धहमालय मैं हाँ। सभी िृक्षों ंमें पधित्र अश्वत्थ (पीपल) मैं हाँ। देिधषणयों ंमें नारद, गन्धिो में धित्ररथ, धसद्धों ंमें कधपल मुधन और अश्वों ंमें उच्चैःश्रिा मैं ही हाँ। िेष्ठ हाधथयों ंमें इन्द्र का हाथी ऐराित मैं हाँ। मनुष्यों ंमें रािा मैं हाँ। िस्त्रों ंमें िज्र मैं हाँ। गौओं ंमें धदव्य कामधेनु मैं हाँ। सन्तान की उत्पधत्त का हेतु कामदेि मैं हाँ। सपों में िासुधक मैं हाँ। नागों ंमें िेषनाग मैं हाँ। िलिरों ंका रािा िरुण मैं हाँ। धपतरों ंमें अयणमा मैं हाँ। िासकों ंमें यमरािा मैं हाँ। दैत्यों ंमें प्रह्लाद मैं हाँ। गणना करने िालों ंमें काल मैं हाँ। पिुओं ंमें मृगरािा धसंह मैं हाँ। पधक्षयों ंमें गरुड़ मैं हाँ। पधित्र करने िालों ंमें िायु मैं हाँ। िस्त्रधाररयों ंमें राम मैं हाँ। मत्स्यों ंमें मगरमच्छ मैं हाँ। नधदयों ंमें गंगा मैं हाँ। हे अिुणन, संक्षेप में समस्त सृधि का आधद, मध्य और अन्त मैं ही हाँ। धिद्याओं ंमें अध्यात्म-धिद्या मैं हाँ। धििाद करने िालों ंमें तत्त्व-धनणाणयक िाद मैं हाँ। अक्षरों ंमें अकार मैं हाँ। समासों ंमें द्वन्द्व समास मैं हाँ।" भगिान् कहते हैं- "अक्षय
काल मैं हाँ और धिराट स्वरूप धिधाता मैं हाँ। सबका नाि करने िाला मृत्यु मैं हाँ और भािी िैभि का अभ्युदय भी
मैं ही हाँ। स्त्रीिाधिक गुणों ंमें कीधतण, श्री, िाणी, स्मृधत, मेधा, धृधत और क्षमा मैं हाँ। गेय मन्त्रों ंमें बृहत्साम में हाँ। छन्दों ंमें गायत्री छन्द मैं ही हाँ। महीनों ंमें मागणिीषण महीना मैं हाँ और ऋतुओं ंमें िसन्त ऋतु मैं हाँ। छल-कपट करने िालों ं
में छल मैं हाँ। तेिमस्वयों ंमें तेि मैं हाँ। धनश्चय करने िालों ंका धनश्चय एिं सात्मत्वक पुरुषों ंका सात्मत्वक भाि मैं हाँ। िृष्णिंधियों ंमें िासुदेि मैं हाँ। पाण्डिों ंमें अिुणन मैं हाँ। मुधनयों ंमें व्यास तथा कधियों ंमें िुक्रािायण मैं हाँ। दमन करने िालों ंमें दमनिक्ति, धििय िाहने िालों ंमें कूटनीधत, गोपनीय भािों ंमें मौन तथा तत्त्वज्ञाधनयों ंमें तत्त्वज्ञान मैं ही हाँ। सब िीिों ंकी उत्पधत्त का कारण मैं हाँ। मुझसे रधहत धकसी िर और अिर का अत्मस्तत्व नहीं ंहै। मेरी धदव्य धिभूधतयों ंका कोई अन्त नहीं ंहै। इस सम्पूणण िगत को मैं अपने एक अंि मात्र से धारण धकये हुए हाँ।"

इस अध्याय में अिुणन भगिान् से उनकी धिभूधतयों, उनकी योग–िक्ति तथा उनके ध्येय स्वरूप को िानना िाहते थे। अतः परम प्रभु उन्हें ध्यान की प्रधक्रया समझाते हैं। प्रभु कहते हैं धक मन का उद्गम सथान अथाणत् बुद्धि िेतना प्राप्त करने के धलए ध्यान में मन की िेतना के सथूल स्तर से सूक्ष्म स्तर की ओर ले िाना िाधहए। मन सदैि बधहमुणख हुआ करता है और इत्मन्द्रयों ंकी स्पिाणनुभूधत पर धनभणर करता है। भगिान् के कथनानुसार िब मनुष्य को यह दृढ़ धिश्वास हो िाता है धक केिल भगिान् ही मूल-तत्त्व के रूप से सभी पदाथों में धिद्यमान हैं, तब मन को अनुभूधत के सथूल स्तर पर यह धिश्वास होने लगता है धक धिषय का हादण अथाणत् िेतना ही उसका मूल-स्वभाि है। उसके पश्चात् आन्तररक िेतना को सहि ही अबाध रूप से बाह्य िेतना का अनुभि होने लगता है। इस प्रकार भगिान् यह धिक्षा देते हैं धक व्यक्ति भागितीय िेतना में सदैि त्मसथत रह सकता है।

इस प्रकार 'धिभूधतयोग' नामक यह दिम अध्याय समाप्त होता है।

एकादि अध्याय

धिश्वरूपदिणनयोग

गुह्य अध्यात्म-ज्ञान, धदव्य ऐश्वयण एिं धिभूधतयों ंके धिषय में भगिान् श्रीकृष्ण का धनरूपण सुनने के बाद अिुणन ने कहा "अब मेरा भ्रम नि हो गया है।" िह धदव्य धिश्वरूप देखने की अपनी इच्छा प्रकट करते हुए प्राथणना करते हैं "हे कृष्ण! यधद आप ऐसा समझते हैं धक मैं आपका धदव्य स्वरूप देखने योग्य हाँ, तो कृपया आप अपने अधिनािी धिराट् स्वरूप का दिणन करायें।" अपने धप्रय एिं श्रद्धालु भि की धिनती सुन कर श्रीकृष्ण ने कहा : "हे

अिुणन! मेरे अलौधकक नाना ि्धि, नाना िणण तथा आकृधत-धिधि ितिि्त तथा सहस्र-सहस्र रूपों ंको देखो। आधदत्यों,ं िसुओं,ं रुिों ंतथा अनेक आश्चयणमय मेरे रूपों ंको धिन्ें आि तक पहले कभी नहीं ंदेखा गया, उन्ें तुम देखो। िरािर-सधहत समूपूणण िगत् को भी इस मेरे िरीर में अियि-रूप से एकत्र त्मसथत आि देख लो तथा अन्य िो कुछ भी देखना िाहते हो, िह भी देख लो।"

अिुणन को अपने िमणिि्कुषुओं ंिारा उस धदव्य रूप को देखने में असमथण पा कर के भगिान् ने उन्ें धदव्य दृधि प्रदान की।

संिय, िो युद्ध-क्षेत्र में िल रही सभी घटनाओं ंको प्रत्यक्ष देख रहे थे, अब अिुणन को श्रीकृष्ण ने अपना िो धदव्य रूप धदखाया था, उसका िृतरािर के सुिख िणणन करते हैं।

श्रीकृष्ण भगिान् के उस धिराट् स्वरूप में अिुणन ने नाना धिभागों ंमें त्मसथत समस्त िगत् का दिणन धकया। उसमें हिारों ंअियिों ंसधहत सभी धदिाओं ंकी ओर मुखाकृधतयों,ं अनेक मुख और उदरों ंसे युि, मालाओं ंतथा आभूषणों ंको िारण धकये हुए तथा िस्त्रों ंको हाथों ंमें उठाये हुए रूप को उन्ोंने देखा। उस धिराट् स्वरूप के सूयण और िन्द्र मुख्य नेत्र थे। आकाि में हिारों ंसूयों के एक-साथ उधदत होने पर िैसा प्रकाि हो िैसे प्रकाि से भगिान् प्रकाधित थे। ऐसा अद्‌भुत धदव्य रूप देख कर अिुणन ने श्रद्धापूिणक नमस्कार कर कहा: "मैं आपको धिनके अनेक हाथ, पेट, मुख और नेत्र हैं, ऐसा सब ओर से देख रहा हाँ। मैं कमलासन पर त्मसथत ब्रह्मा, ि्धि तथा सभी ऋधषयों,ं एकादि रुिों,ं िादि आधदत्यों,ं आठ िसुओं,ं साध्यों,ं धिश्वेदेिों,ं अधश्वनीकुमारों,ं मरुद्गणों,ं धपतरों ं गन्धिो, यक्षों,ं असुरों ंऔर धसद्धों ंके समुदाय को देख रहा हाँ िो सब-के-सब धित्मस्मत हुए आपको देख रहे हैं। आपके अनेक मुखों ंसे अधि की लपटें बाहर धनकल रही हैं। अनेक दाँतों ंिाले इस भयंकर रूप को देख कर सभी लोक भयभीत हो रहे हैं। अनेक िणों से प्रकाधित इस धदव्य रूप को, आकाि को स्पिण करते हुए एिं फैले हुए धििाल मुखों ंको देख कर िहाँ एकधत्रत कौरिों ंसधहत पृथ्वी के असंख्य रािा, भीष्म, िोण, कणण आधद आपके प्रखर प्रज्वधलत मुखों ंमें ऐसे प्रिेि कर रहे हैं मानो समुि में नधदयाँ प्रिेि कर रही हों।ं उनमें से कुछ तो आपके दाँतों ंके दरािों ंमें धिपके हुए हैं और उनका धिर िकनािूर हो रहा है। प्रज्वधलत अधि में िैसे अपने धिनाि के धलए पतंगे िेग के साथ दौड़ पड़ते हैं, िैसे ही ये सब योद्धा लोग भी आपके प्रदीप्त मुखों ंमें बड़े िेग के साथ प्रिेि हो रहे हैं। आप अपने प्रज्वधलत मुखों ंसे उन सबको सभी ओर से अपना ग्रास बनाते हुए िाटे िा रहे हैं। आपकी प्रभाएँ समस्त संसार को व्याप्त कर अपने उग्र तेि से उसे सन्तप्त कर रही हैं।"

तब अिुणन ने पूछा: "ऐसे उग्र रूप िाले आप कौन हैं, यह मुझे बताइए। मैं िानना िाहता हाँ धक यह रूप आपने धकस प्रयोिन से िारण धकया है?"

इस पर भगिान् श्रीकृष्ण ने कहा "मैं धिश्व का धिनाि करने िाला अधत-उग्र काल हाँ और लोकों ंका संहार करने में प्रिृत्त हुआ हाँ। तुम्हारे युद्ध धकये धबना भी िितुरु-पक्ष के ये सभी योद्धा िीधित नहीं ंबिेंगे। कौरि-दल के भीष्म, िोण, ियिथ, कणण आधद सभी िीर योद्धाओं ंको मैं मार िुका हाँ। मैंने उनका धिनाि कर िाला है। तुम केिल इसके धनधमत्त मात्र बन कर धििय प्राप्त करो और समृत्मद्धिाली राज्य का उपभोग करो।"

अब संिय अिुणन की अिसथा और सिणित्मिमान् प्रभु से उन्ोंने िो प्राथणना की, उसका िणणन करते हैं।

अिुणन दोनों ंहाथ िोड़ कर काँपते हुए नतमस्तक हो भगिान् को प्रणाम कर गद्गद कण्ठ से प्रभु से बोले : "आपके भि संसार में आपका नाम, यि और धिभूधतयों ंका गान करते हुए आनन्दमि हो रहे हैं, िब धक दुि प्रकृधत िाले राक्षस भयभीत हो नाना धदिाओं ंमें भाग रहे हैं, धसद्धों ंके सभी समूह आपको प्रणाम कर रहे हैं।"

भगिान् श्रीकृष्ण के धिश्वरूप को देख कर अिुणन ने कहा : "हे महिान्! ये दिु लोग आपको प्रणाम क्‍यों ं न करें; क्‍योंधंक आप सबसे अधिक महान् हैं। सृधिकताण ब्रह्मा के भी आप आधद कारण हैं। हे दिेि! हे िगधििास ! आप व्यि तथा अव्यि तथा उनसे भी परे अक्षर ब्रह्म हैं। आप आधददेि हैं, पुराण पुरुष हैं, धिश्व के परम आश्रय-सथान हैं तथा ज्ञाता, ज्ेञेय और परम िाम हैं। आप अपने रूपों ंको िारण कर धिश्व में व्यापे हुए हैं। आप ही िायु, यम, िरुण, िन्द्रमा, ब्रह्मा तथा प्रधपतामह हैं। हे भगिान्! आपको बार-बार प्रणाम है। मैं पुनः पुनः सहस्रों ंबार आपको नमस्कार करता हाँ। मैं आपको आगे, पीछे तथा सभी ओर से नमस्कार करता हाँ। हे अनन्त सामथ्यण तथा अधमत पराक्रम िाले ! आप समस्त धिश्व को व्याप्त धकये हुए हैं; इसधलए आप सिणरूप हैं। मैंने आपकी मधहमा न िानिे हुए अिसिानी, प्रमाद या पे्रम के िशीभूत हो आपको अकेले में अथिा धमत्रों ंके बीि सखा मान कर 'हे कृष्ण, हे यादि, हे सखा' आधद शब्दों ंसे सम्बोधित धकया है, इसके धलए हे अप्रमेय स्वरूप ! मुझे क्षमा कीधिए। यही मेरी आपसे धिनम्र प्राथणना है। आप इस िरािर िगत् के धपता हैं। आप इस लोक-समुदाय में पूिनीय और पूज्य गुरु हैं। हे अप्रधतम प्रभाि िाले, तीनों ंलोकों ंमें िब आपके समान भी कोई नहीं ंहै तो आपसे अधिक दूसरा कोई हो ही कैसे सकता है? इसधलए हे आराध्य देि। मैं आपको नत-मस्तक हो साष्टांग नमस्कार कर आपसे क्षमा-यािना करता हाँ। हे भगिान्' िैसे धपता पुत्र को, धमत्र अपने सखा को, धप्रयतम धप्रया को क्षमा कर देते हैं िैसे आप भी मेरे अपरािों ंको क्षमा करें। मैंने पूिण में कभी न देखा हुआ आपका अलौधकक रूप आि देखा और इससे मुझे परम हषण हुआ है; परन्तु मेरा हृदय भय से काँप रहा है। मैं अब पुन धदव्य मुकुट, गदा तथा सुदशणनिक्र-युि ितुभुणि रूप में आपको देखना िाहता हाँ। आपके इस धिराट् धिश्वरूप को देखने की शक्ति तथा साहस मुझमें नहीं ंहै।"

इस पर भगिान् श्रीकृष्ण ने कहा "हे अिुणन, मैंने अपना यह परम रूप केिल तुम्हें ही अपनी योगशक्ति के प्रभाि से धदखाया है। आि तक इस मत्यणलोक में धकसी ने इस स्वरूप को नहीं ंदेखा। इस धिश्वरूप का दशणन शास्त्रों ंके अभ्यास से, धक्रयाकमों से, दान से अथिा उग्र तपश्चयाण से नहीं ंहो सकता। केिल मेरी एकाग्र मन से भक्ति करने िाला ही इसे देख सकता है।"

संिय ने िृतराष्ट्र को बताया धक बाद में श्रीकृष्ण भगिान् ने पुनः अिुणन को अपने ितुभुणि रूप में दशणन दे कर उनको आश्वस्त धकया।

श्रीकृष्ण ने अिुणन की इच्छा पररपूणण कर उन्हें बतलाया धक उनके इस रूप का दशणन अन्य लोगों ंके धलए अत्यन्त दुलणभ है। देिता गण भी उनके इस रूप को देखने के धलए आतुर रहते हैं। िेद के अध्ययन से, दान से, तप या यज्ञाधद से भगिान् के दशणन नहीं ंहो सकते। केिल एकाग्र भक्ति से ही उन्हें िानना, देखना तथा उनमें लीन होना सम्भि है। िो अपने सभी काम धनष्काम भाि से, ईश्वरापण बुक्तद्ध से केिल मुझको ही सिोच्च मान कर करते हैं, िो भक्ति-भाि से मुझमें तन्मय रहते हैं, धिन्हें अन्य धकसी िस्तु की िाह नहीं ंहै और िो धकसी भी प्राणी के प्रधत िैर-भाि नहीं ंरखते, ऐसे भि ही मुझे पा सकते हैं।

इस अध्याय में यह बतलाया गया है धक सिणशक्तिमान् परमात्मा का धिश्वरूप िमणिक्षुओं ंद्वारा देख सकना असम्भि है। मन को सम्पूणण रूप से पधित्र बनाये धबना यधद कोई धिश्वरूप का दशणन करेगा तो अिुणन के समान ही उसे भारी आघात लगेगा। भगिान् कहते हैं धक सब साधक सामान्य रूप से िैसा करते हैं, उस प्रकार के केिल शास्त्राभ्यास से, तप से, दान से अथिा यज्ञ से उनका साक्षात्कार नहीं ंहो सकता। केिल धनि िाली अनन्य भक्ति के द्वारा ही उन्हें िाना िा सकता है, देखा िा सकता है तथा गम्भीर ध्यान में शुद्ध तथा धनदोष अन्तःकरण द्वारा उनका साक्षात्कार धकया िा सकता है। भगिान् पुन बल देते हुए कहते हैं धक सिणशक्तिमान् प्रभु में अटूट श्रद्धा तथा उनका भक्तिपूणणक ध्यान ही भगिद्-िेतना प्राप्त करने एिं मानि का अज्ञान दूर करने का एकमात्र साधन है। इसीधलए मुधन गण कहते हैं धक इस संसार में कोई भी व्यक्ति िीिन के धकसी भी क्षेत्र में रहता

हुआ भगिद्-साक्षात्कार प्राप्त कर सकता है। इसके धलए आकांधक्षत योग्यता सांसाररक पद या िैभि नहीं ंअधपतु श्रद्धा, भत्मि और अधिरत ध्यान है।

इस प्रकार 'धिश्वरूपदिणनयोग' नामक यह एकादि अध्याय समाप्त होता है।

ाादि अध्याय

भत्मियोग

धपछले अध्याय में भगिान् श्रीकृष्ण ने अिुणन को बतलाया था धक िीिन के िरम लक्ष्य अथाणत् भगिद्-साक्षात्कार को प्राप्त करना अनन्य भत्मि के िारा ही सम्भि है। भगिान् ने सगुण और धनगुण-इन दोनों ंप्रकार की भत्मियों ंका धनरूपण धकया है। अब अिुणन श्रीकृष्ण से पूछते हैं धक धकस प्रकार का भि श्रेष्ठ योगिेत्ता है।

श्रीकृष्ण कहते हैं धक िो भि गम्भीर तथा परम श्रद्धा से भगिान् को सबका स्वामी और योगेश्वर मान कर उनके धिश्वरूप में सदा अपना मन एकाग्र करता है और िो सब प्रकार की कामनाओं ंऔर दुिाणसनाओं ंसे मुि रहता है, िह योधगयों ंमें सिणश्रेष्ठ है। िो अपनी सभी इत्मन्द्रयों ंका संयम कर लेता है, सदैि समत्व बुत्मद्ध रखता है, सब प्राधणयों ंके कल्याण में रत रहता है, िह भी भगिद्-साक्षात्कार पा लेता है। भगिान् कहते हैं धक सगुण तथा धनगुण, उभय प्रकार की उपासना करने िाले भि भगिान् के समीप पहुाँि िाते हैं। अव्यि की उपासना कधठन है, पर िह िीघ्र पररणामदायक है। धनगुण ब्रह्म के उपासक को प्रारम्भ से ही अपने िरीर का लेि मात्र भी मोह नहीं ंहोना िाधहए।

भगिान् कहते हैं: "हे अिुणन! तुम भी मेरे धिश्वरूप में अपने मन और बुत्मद्ध को त्मसथर करो। ऐसा करने से तुम मेरे ही रूप से मुझमें धनिास कर करोगे। यधद यह तुम्हारे धलए सम्भि न हो तो योग के सतत अभ्यास से मुझमें मन को त्मसथर करो। यधद इसमें भी तुम असमथण हो तो तुम मत्कमणपरायण हो कर केिल उनके साक्षी बने रहो। इससे तुम पूणणता को प्राप्त कर सकोगे। यधद मेरे धलए कमण करना असम्भि प्रतीत हो तो मेरी िरण ले कर कमण-फल मुझे अपण कर दो।"

भगिान् श्रीकृष्ण अिुणन की सहायता करने के धलए अनेक युत्मियााँ बताते हैं धिससे िह उनमें से एक को पसन्द कर उसके अनुसार आिरण िारा भगिद्-साक्षात्कार कर सके। भगिान् कहते हैं धक अभ्यासयोग की अपेक्षा ज्ञान श्रेष्ठ है। सैद्धात्मन्तक परोक्ष ज्ञान की अपेक्षा ध्यान श्रेष्ठ है। (कमण-फल का) त्याग ध्यान से श्रेष्ठ है। ध्यान में एकाग्र हो कर परम तत्त्व का अधिरत धिन्तन करना प्रिता है। भगिान् कहते हैं धक कमण-फल के त्याग से मनुष्य परम िात्मन्त (िैश्व िैतन्य) पा सकता है। अब धिसने मानधसक िात्मन्त प्राप्त कर भगिद्-साक्षात्कार कर धलया है, ऐसे भि के लक्षणों ंका भगिान् िणणन करते हैं।

"िो मनुष्य धकसी भी प्राणी से िेष नहीं ंकरता, सबके साथ मैत्री और करुणा-भाि रखता है, िो ममता और अहंकार से रधहत है, सुख-दुःख में सनुतुधलत रहता है, सदा सनुति है, समाधहत धित्त है, अपने मन और बुत्मद्ध को मुझमें अपण कर धदया है, ऐसा भि मुझको धप्रय है। धिससे संसार को उिग नहीं ंहोता और िो संसार से उिधि नहीं ंहोता, िो हषण, अमषण और उिग से मुि है, िह मुझको प्यारा है। िो धनःसूपृह है, अन्तबाणह्य िुद्ध, प्रत्येक कायण में धनपुण, पक्षपात-रधहत, व्यथिून्य तथा सभी सकाम कमों के आरम्भों ंका त्याग करने िाला है, िह मुझे धप्रय है। िो धमत्र तथा ितुरु को सम भाि से देखता है, धिसे सद् और असद्, मान और अपमान, िीत और उष्ण आधद परस्पर धिरोधी अनुभि समान प्रतीत होते हैं और िो पूणण भत्मियुि है, ऐसा व्यत्मि मुझको धप्रय है। िो धनन्दा और सुतुधत को समान मानता है, िो मौनी है, िीिन-धनिाणह के धलए िो कुछ धमल िाये उसी में सनुति है,

धिसे अपने धनिास सथान में भी कोई ममता अथिा स्वाधमत्व-भािना नहीं ंहै, िो ध्यान में पूणणतः धनमि रहता है, ऐसा भि मुझे अत्यन्त धप्रय है।"

भगिान् श्रीकृष्ण भगिद्-िेतना में मि पुरुष का उपयुणि रूप में िणणन करते हैं और धिस अमृत-रूप मिण िारा ऋधषयों ंने सिण-सत्तािी परम धे्येय-स्वरूप परमेश्वर को प्राप्त कर धलया है, उस िमण का अनुसरण करने की मानि मात्र को पे्ररणा देते हैं।

इस अध्याय में भगिान् मानि िाधत को अमृत-स्वरूप िमण का आिरण करने की धिक्षा देते हैं। सच्चा मिण िही है िो मनुष्य को ईश्वर के समीप पहुाँिा दे। िब लोग अिमाणिरण करते हैं तब िे दुःख पाते हैं और िब िाधमणक िीिन व्यतीत करते हैं तब िािीन सुखी और सनु्तुधलत रहते हैं। परमानन्द की धदिा में उधिकास की प्रधक्रया में उनके िीिन का प्रते्येक अंग अन्य अंगों ंके साथ सामंस्यिपूणण बन िाता है। यधद मनुष्य िीिन में िमण का आिरण करे तो उसे भौधतक एिं आध्यात्मिक-दोनों ंक्षेत्रों ंमें परम आनन्द प्राप्त होता है; क्ोंधक इससे आन्तर तथा बाह्य िीिन में समन्वय सि िाता है। धपछले अध्याय में भगिान् ने अिुणन को िो अत्मसथर धदव्य दिणन कराया था, उसका यधद सतत अनुभि लेना हो तो उसके धलए िार प्रकार के आध्यात्मिक अभ्यास-ज्ञान, योग, भत्मि और कमण-इस अध्याय में धनिाणररत धकये हैं। िब पूणणयोग की इस धिधि से सतत दिणन होने लगता है तब इस अध्याय में िणणन धकये अनुसार व्यत्मि भगिद्-भि बनता है।

इस प्रकार यह 'भत्मियोग' नामक िादि अध्याय समाप्त होता है।

त्रयोदि अध्याय

क्षेत्रक्षेत्रज्ञधिभागयोग

प्रथम छह अध्यायों ंमें भगिान् श्रीकृष्ण ने कमणयोग को और उसके पश्चात् बारहिें अध्याय तक भत्मियोग को समझाया है। अब अत्मन्तम छह अध्यायों ंमें िे ज्ञानयोग का धिरण देते हैं। तेरहिें अध्याय से आरम्भ कर भगिान् अब उच्च कोधट के तात्मत्त्वक ज्ञान का धििेिन करते हैं और िे निीन धिषय में प्रिेि करते हैं िो अतीि व्यिहाररक एिं गम्भीर रूप में अध्यिापरक है। बारहिें अध्याय के अन्त तक के धििेिन का स्वरूप आध्यात्मिक, मानधसक तथा भौधतक था। इस िगीकरण के अनुसार बारहिें अध्याय में ईश्वर के स्वरूप के धिषय का उपसंहार धकया गया है। भगिद्गीता के टीकाकार सामान्यतः गीता के अठारह अध्यायों ंके तीन धिभाग करते हैं। प्रथम छह अध्यायों ंमें िीिात्मा के सिणित्मिमान् ईश्वर के साथ सिन्ध पर प्रकाि िाला गया है। सातिें से बारहिें अध्याय तक के छह अध्याय िीिात्मा का परमात्मा के साथ धमलन (योग) की रीधत अथिा पूणणता का पथ

बतलाते हैं। तेरहिं अध्याय से आरम्भ होने िाले अत्मन्तम छह अध्यायों ंमें प्रथम तथा धितीय धिभाग में िधणणत ज्ञान का समन्वय धकया गया है।

भगिान् श्रीकृष्ण अब तक धिस धिषय पर बल दे रहे थे, उसमें ओिनक पररितणन कर व्यत्मि और समधि के सिन्धों ंपर िोर देते हैं। इस सन्दभण में िे व्यत्मि और समधि-दोनों ंके धिषय में एक-साथ धनदेि करते हैं, क्ोंधक यहााँ ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय के धिधिध सिन्धों ंका धिश्लेषण है। ज्ञाता और ज्ञेय ज्ञान िारा एक-दूसरे के साथ सलि हैं। ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय के धिधिध सिन्धों ंके स्वरूप का िणणन इस अध्याय का मुख्य धिषय है। ज्ञाता अथाणत् िानने िाला तो ज्ञान का आलिन ही है, यह बतला कर भगिान् श्रीकृष्ण अपने उपदेि का प्रारम्भ इत्मन्द्रयों ं को स्पिण करने िाली सत्ता से अथाणत् सथूल िरीर से करते हैं। इस अध्याय के कुछ ििधधक्षत श्लोकों ंके धिषय की ििणि क्रमिः ऊध्वणतर होती िाती है।

धपछले अध्याय में अिुणन ने भगिान् से सगुण और धनगुण उपासको की तुलनािक श्रेिता के धिषय में पूछा था; पर भगिान् ने प्रश्न के एक भाग का ही उत्तर धदया था। अतः अिुणन प्रश्न के दूसरे भाग पर पुनः प्रश्न करते हैं।

अिुणन ने कहा- "हे ििेि ! मैं प्रकृधत तथा पुरुष, क्षेत्र तथा क्षेत्रज्ञ, ज्ञान तथा ज्ञेय के धिषय में िानना िाहता हाँ।"

तब भगिान् कहते हैं धक सथूल, सूक्ष्म और कारणभूत िरीर, धिनके िारा सुख-दुःख का अनुभि होता है, क्षेत्र कहलाता है। क्षेत्र अथाणत् िरीर मुझसे अलग है, ऐसा िो ज्ञानपूिणक िानता है, िह क्षेत्रज्ञ कहलाता है। िह अन्तयाणमी सभी क्षेत्रों ंका मूक साक्षी है और संसार का धिषय नहीं ंहै। क्षेत्र तथा क्षेत्रज्ञ (प्रकृधत, प्रकृधत का धिकार तथा पुरुष) का ज्ञान परम ज्ञान कहलाता है। अिुणन में इस धिषय की अधिक रुधि उत्पि करने के धलए भगिान् ऋधषयों,ं िेदों ंऔर ब्रह्मसूत्रों ंके इस धिषय पर उद्धरण दे कर उनके प्रधत अपना आदर व्यि करते हैं। भगिान् कहते हैं धक ऋधषयों ंने अनेक प्रकार से धिधिध छन्दों ंतथा युत्मियुि और धनश्चयपूणण िब्दों ंमें इस ज्ञान को गाया है। उन्ोंनें घोधषत धकया धक पााँि महाभूत, अहंकार, बुत्मद्ध, मूल प्रकृधत, दि ज्ञानेत्मन्द्रयााँ तथा कमेत्मन्द्रयााँ, मन, इत्मन्द्रयों ंके पााँि धिषय, इच्छा, िेष, सुख, दुःख, सथूल देह, िेतना और िृधत-ये सब उस क्षेत्र (िरीर) के धिकार हैं धिन्ें क्षेत्रज्ञ िानता है।

अब श्रीकृष्ण सच्चे आिज्ञान के नाम से धिख्यात सद्गुणों ंका, धिनसे व्यत्मि आि-साक्षात्कार की ओर उन्मुख होता है, िणणन करते हैं। नम्रता, अधहंसा, क्षमा, सरलता, अदम्भ, त्मसथरता, आि-संयम, इत्मन्द्रय धिषयों ंके प्रधत िैराग्य, सदािार, धनरधभमानता, धनरहंकाररता, िन्म, मृत्यु, िरा एिं व्याधियों ंके दोषों ंका अनुधिन्तन, अनासत्मि, िरीर, स्त्री, पुत्र, गृह आधद के प्रधत धनमोह, इि तथा अधनि प्रसगों ंमें समधित्तता, अनन्य योगपूिणक भगिान् की अव्यधभिाररणी-भत्मि, एकान्तिास, िन-सम्पकण से अरुधि, अध्याि-ज्ञान में धनिा, तत्त्व-ज्ञान के अथण-रूप परमािा का दिणन-यह सब सच्चा ज्ञान है और इससे धिपरीत िो कुछ है, िह सब अज्ञान कहलाता है। सािक को उपयुणि इन सब सद्गुणों ंको बुत्मद्ध तथा आि-धिश्लेषण अथिा आि–िागृधत िारा प्राप्त करना िाधहए। इन गुणों ंका आिरण धिधिध भि से नहीं ंकरना िाधहए।

अब भगिान् श्रीकृष्ण पुरुष का िणणन करते हैं िो िानने योग्य है तथा धिसको िान लेने से मनुष्य अमर हो िाता है। यह परब्रह्म (पुरुष) अनाधद है। िह न तो सत् और न असत् ही कहा िाता है। उसके हाथ-पााँि सिणत्र हैं। उसके नेत्र, कान, मस्तक और मुख सिणत्र हैं और िह समस्त धिश्व में व्याप्त है। उसमें सभी इत्मन्द्रयों ंके धिषयों ं के गुणों ंका आभास होता है, धफर भी िह इत्मन्द्रय-रधहत अनासि है, सबका आिार है और प्रकृधत के तीन प्रकार (सत्त्व, रि और तम) के गुणों ंसे अतीत होते हुए भी उनका भोिा है। िह सभी ििों ंके भीतर-बाहर रहता है।

हि अिर और िर भी है। अधत सूक्ष्म होने के कारण िह दुज्ञेय है, कधठनाई से िाना िाता है। िह दूर भी है और समीप भी। िह अधिभि होते हुए भी सब प्राधणयों ंमें पृथक् पृथक्-सा रहता है। िह सब प्राधणयों ंका सिणक, ारिक और संहारक है। िह सब ज्योधतयों ंकी ज्योधत है और अन्धकार से परे है। बह ज्ञान, ज्ञेय तथा ज्ञान का ध्येय है और सबके हृदय में त्मसथत है। इस प्रकार श्रीकृष्ण क्षेत्र, ज्ञान तथा ज्ञान का धिषय संक्षेप में समझाते हैं और अन्त में कहते हैं "मेरा भि इस तत्त्व को िान कर मेरे स्वरूप को प्राप्त होता है।"

प्रारम्भ में भगिान् श्रीकृष्ण अिुणन को क्षेत्र, क्षेत्रज्ञ और ज्ञान के धिषय में समझाते हैं। िे क्षेत्र के यथाथण स्वरूप और उसके धिकारों ंका धििरण देने के पश्चात् प्रसंगिि आध्यात्मिक पथ पर िलने िाले सािकों ंके गुणों ंका उल्लेख करते हैं, धिनको िान कर मनुष्य बुत्मद्धमान् बनता है। एकमात्र िसुतु धिसे पुरुष (परब्रह्म) कहते हैं, उसके सभी स्वरूपों ंकी िे धिसूतृत ििण करते हैं।

अब भगिान् श्रीकृष्ण सांख्यिास्त्र के अनुसार पुरुष और प्रकृधत के बीि सथाधपत सिन्धों ंका िणणन करते हैं। प्रकृधत और पुरुष ईश्वर-स्वरूप होने से दोनों ंअनाधद हैं। सभी प्रकार के धिकार अथिा गुण प्रकृधतिन्य हैं। िरीर और इत्मन्द्रयााँ प्रकृधत से उत्पि हुए हैं तथा पुरुष (ििी) प्रकृधत के साथ सित्मन्धत होने के कारण सुख-दुख का अनुभि करता है। प्रकृधत के गुणों ंमें आसत्मि अच्छी या बुरी योधनयों ंमें िन्म लेने को बाध्य करती है। िरीर में रहने िाला आिा सबका साक्षी, भताण, भोिा, महेश्वर और परमािा है। िो कोई इस गुह्य पुरुष और गुणों ंसधहत प्रकृधत को िानता है, िह कमण करते हुए भी पुनिणन्म को नहीं ंप्राप्त होता है; क्ोंधक िह कताण-कमण से परे िैतन्य का अनुभि करते हुए सदा परमानन्द में लीन रहता है।

श्रीकृष्ण आि-दिणन के अनेक उपाय बताते हैं। प्रत्यक्िैतन्य अथिा अहंिैतन्य का सथान अन्तःकरण है। कुछ लोग सिगता से अन्त करण के व्यापारों ंका पररत्याग कर प्रगाढ़ ध्यान से आि-तत्त्व का दिणन करते हैं। अन्य लोग साख्य-योग िारा अथाणत् िरीर, इत्मन्द्रय, मन एिं बुत्मद्ध के कायों के साक्षी बन कर तथा सबको प्रकृधतिन्य खेल और पुरुष (आिा) को कमण-रधहत िान कर ििीिैतन्य और परमिैतन्य के ऐक् का अनुभि करते हैं। अन्य कुछ लोग कमणयोग िारा अथाणत् उधिकास के धकसी भी स्तर पर अनासि भाि से अपने िमण का, कतणव्य का पालन कर परमािा का साक्षात्कार करते हैं और मोक्ष के अधिकारी बनते हैं। िो ििूो उपायों ंसे अनधभज्ञ हैं, ऐसे भि लोग िास्त्रों ंएिं गुरु का आश्रय ले कर भत्मिपूिणक उपासना करते हैं, स्वयं अच्छे आिरण करते हुए दूसरों ंकी भलाई करते हैं और धकसी भी प्रकार का भेद-भाि न करते हुए धदव्य िीिन व्यतीत करते हैं, िे भी भगिद्-प्रात्मप्त कर लेते हैं।

श्रीकृष्ण कहते हैं धक इस संसार में िो कुछ सथािरिंगम पदाथण हैं, िे सब प्रकृधत और पुरुष के संयोग से उत्पि होते हैं यथाथणदिी व्यत्मि परमािा को सभी ििों ंमें सम भाि से त्मसथत देखता है। िब िसुतुओं ंका नाि होता है, तब भी िह परमािा नि नहीं ंहोता। ऐसा भि दूसरे को कभी दुःख नहीं ंदेता; क्ोंधक िह िानता है धक उसकी अपनी आिा ही सबमें व्याप्त है। िब व्यत्मि यह िान लेता है धक आिा अकताण है, प्रकृधत ही समूपूणण कायण करती है तथा पृथक् पृथक् भाि से समस्त प्राधणयों ंमें एक आिा अित्मसथत है तब िह ब्रह्म को प्राप्त होता है, ब्रह्म में लीन हो िाता है।

भगिान् कहते हैं "हे अिुणन ! परमािा अधिनािी है; आधद, अन्त और गुणों ंसे रधहत है। िह िरीर में रहते हुए भी कमण नहीं ंकरता और न कमण में धलप्त ही होता है।" िैसे पृथ्वी, िल, अधि और िायु में व्याप्त आकाि उनके गुणों ंसे धलपायमान् नहीं ंहोता, िैसे ही पुरुष (ििी) प्रकृधत में (िरीर में) रहते हुए भी उसके गुणों ंसे अधलप्त रहता है। धिस प्रकार एक ही सूयण समूपूणण ब्रह्माण्ड को प्रकाधित करता है, उसी प्रकार एक ही आिा समूपूणण क्षेत्र को प्रकाधित करता है। िो अपने ज्ञानिक्षुओं ंिारा क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के यथाथण भेद को िान लेता है तथा यह भी िानता है धक सभी प्रकृधत से उत्पि होते हैं, िह परम-पुरुष परमािा को प्राप्त होता है।

इस अध्याय में भगिान् यह उपदिे देते हैं धक मनुष्य को साक्षी बन कर रहना िाधहए तथा धििेकपूिणक
यह समझ लेना िाधहए धक संसार की सब िस्तुएँ प्रकृधत और पुरुष (िीि) के संयोग से उत्पि हुई हैं। मनुष्य को अपनी बुत्मद्ध, मन, इत्मन्द्रयों ंऔर िरीर के कायों के साथ अपने को तादात्म्य नहीं ंकरना िाधहए। िैसे पृथ्वी पर धगरा हुआ िषाण का िल धमट्टी के साथ धमल कर गंदा बन िाता है, िैसे ही मनुष्य को अपने स्वरूप को प्रकृधत–धनत
पदाथों से दूधषत नहीं ंहोने देना िाधहए।

इस प्रकार 'क्षेत्रक्षेत्रज्ञधिभागयोग' नामक यह त्रयोदि अध्याय समाप्त होता है।

िुदणि अध्याय

गुणत्रयधिभागयोग

इस अध्याय में भगिान् श्रीकृष्ण प्रकृधत के गुणों ंका िणणन करते हैं। िे (गुण) मनुष्य को कैसे बन्धन में िालते हैं, उनके लक्षण क्ा हैं, उनकी कायणप्रणाली कैसी है, उनसे व्यत्मि कैसे छुटकारा पा सकता है और इस प्रकार मुि हुए व्यत्मि के लक्षण क्ा हैं, इन सबको इस अध्याय में भगिान् बतलाते हैं।

धपछले अध्याय में भगिान् ने कहा धक पुरुष और प्रकृधत का एक-साथ ही परमात्मा से प्रादुभाणि हुआ है; अतः िे दोनों ंिाश्वत हैं। यहााँ श्रीकृष्ण मानि-मन को बोिगम्य धिधि से सृधि की उत्पधत्त का िणणन करते हैं। महत् ब्रह्म मूल-प्रकृधत है और सब प्राधणयों ंकी योधन है, धिसके भीतर भगिान् सभी िीिों ंका बीि िपन करते हैं। इस प्रकृधत और पुरुष के संयोग से ही सभी िीि उत्पि होते हैं।

भगिान् कहते हैं धक सत्त्व, रि और तम-ये प्रकृधत के तीन गुण हैं िो िीिात्मा को िरीर के साथ बााँिे हुए हैं। इनमें सत्त्वगुण धनमणल होने के कारण प्रकाि तथा स्वास्थ्य प्रदान करता है। िह सुख और ज्ञान िारा िीि को िरीर के साथ बन्धनग्रस्त बनाता है। कामना और आसत्मि से उत्पि रिोगुण कमों और उनके फलों ंकी आसत्मि िारा िीि को बन्धन में िालता है। तमोगुण अज्ञान से उत्पि होता है और सब िीिों ंको भ्रात्मन्त में िालता है। िह प्रमाद, आलस्य और धनद्रा को उत्पि कर िीि को िरीर के साथ आबद्ध करता है।

रिोगुण और सत्त्वगुण को दबा कर तमोगुण अपना िचणस्व िमाता है। तमोगुण और सत्त्वगुण को दबा कर रिोगुण प्रबल होता है एिं रिोगुण तथा तमोगुण को दबाने से सत्त्वगुण का िचणस्व बढ़ता है। िब अन्तःकरण तथा इत्मन्द्रयों ंिारा ज्ञान-रूप प्रकाि उत्पि होता है, उस समय सत्त्वगुण का उदय होना समझना चाधहए। िब लोभ, प्रिृधत्त, कमाणरम्भ, अिात्मन्त तथा धिषय-भोगों ंकी लालसा का उदय हो, तब रिोगुण की िृत्मद्ध िाननी चाधहए और तमोगुण के उदय होने पर अप्रकाि, अप्रिृधत्त, प्रमाद और मोह उत्पि होते हैं।

भगिान् कहते हैं धक सत्त्वगुण की िृत्मद्ध के समय मृत्यु को प्राप्त होने िाला िीि उस धनमणल स्वगणलोक में पहुाँचता है िहााँ उत्तम कमण करने िाले लोग िाते हैं। रिोगुण के िृत्मद्ध-काल में मृत्यु को प्राप्त होने पर कमण में आसत्मि िाले लोगों ंमें उत्पि होता है और मृत्यु के समय धिसमें तमोगुण की प्रिानता होती है ऐसा मनुष्य मरणोपरान्त (कीट़, पिु आधद) मूढ़ योधनयों ंमें िन्म ग्रहण करता है।

भगिान् धिक्षा देते हैं धक सार-असार को समझते हुए सुकमण िारा रिोगुण और तमोगुण को हटा कर सत्त्वगुण में त्मसथत हुआ िा सकता है। इसके धलए धनष्काम सेिा, सत्संग, स्वाध्याय, भगिन्नाम िप और ध्यानाभ्यास करना चाधहए। अन्त में भगिान् की अव्यधभचाररणी-भत्मि िारा सत्त्वगुण को भी छोड़ देना चाधहए। िब व्यत्मि प्रकृधत से उत्पि तीनों ंगुणों ंसे ऊपर उठ िाता है, तब िह िन्म-मृत्यु, िरा और दुःखों ंसे मुि हो कर अमरता को प्राप्त कर लेता है।

इन तीनों ंगुणों ंसे परे कैसे हुआ िा सकता है और धत्रगुणातीत पुरुष के क्ा लक्षण होते हैं? अिुणन के इस प्रश्न का उत्तर देते हुए भगिान् कहते हैं धक िो मनुष्य धनश्चल भत्मि से परमात्मा को भिता है, िह गुणों ंको अधतक्रमण कर परमात्मा के साथ एकीभाि सा लेता है। ऐसा मुि पुरुष सत्त्वगुण के कायण-रूप प्रकाि के, रिोगुण के कायण-रूप प्रिृधत्त के तथा तमोगुण के कायण-रूप मोह के प्रिृत्त होने पर न तो िेष करता है और न उनसे धनिृत्त होने की आकांक्षा ही करता है। िह तो परमात्मा के साथ ऐक्-सम्पादन कर सब प्रिृधत्तयों ंमें गुण ही गुणों ंमें बरत रहे हैं, ऐसा िान कर साक्षी के सदृश्य त्मसथत रहता है। िह ित्रु या धमत्र, पत्थर या सोना, मान या

अपमान सबको समान समझता है। िह कताणपन का अधभमान छिो़ कर सिणित्मिमान् प्रभु के हाथ का एक उपकरण बन कर संसार में व्यिहार करता है और ब्रह्मपद पाने का अधिकारी होता है।

इस अध्याय में मानि–ाधत को प्रकृधत के तीन गुणों ंके मुख्य लक्षणों ंका भगिान् िणणन करते हैं और उनके बन्धनों ंसे कैसे मुि हुआ िा सकता है, इसकी रीधत बताते हैं। प्रभु के प्रधत अनन्य पे्रम, ध्यान, धनष्काम कमण आधद के िारा व्यत्मि गुणातीत हो सकता है। इसके साथ ही भगिान् ब्रह्म में एकीभाि प्राप्त पुरुष के लक्षण बताते हुए ब्रह्मपद-प्रात्मप्त का उपाय भी समझाते हैं।

इस प्रकार 'गुणत्रयधिभागयोग' नामक यह ितुदणि अध्याय समाप्त होता है।

पंिदि अध्याय

पुरुषोत्तमयोग

श्रीकृष्ण अपने प्रधत अनन्य भत्मि के धिश्वास के धलए अपनी धदव्य धिभूधतयों ंका एक बार पुनः िणणन करते हैं। िे कहते हैं धक िैराग्य और आि-समपण िारा मनुष्य गुणातीत बन सकता है। िे संसार की पीपल के िृक्ष से तुलना करते हैं, धिसकी ि़ि परमेश्वर में त्मसथत है और धिसकी िाखाएँ धिश्व-धिधाता ब्रह्मा हैं, धिसके पते्त िेद हैं, िो भगिान् और सृधि का गुणगान करते हैं। मानि िरीर की भी िृक्ष के साथ तुलना की गयी है। ऊपर मत्मस्तष्क धिसका ऊध्वणमूल है और मेरुदण्ड को सीिा रखने िाली स्नायु-प्रणाली उसका तना है। धभि-धभि अनेक नाध़ियााँ नीिे की ओर फैल कर िरीर के सारे अियिों ंको अनुसूयूत धकये हैं। इस िृक्ष का पोषण तीनों ंगुणों ंसे होता है। इत्मन्द्रयों ंके धिषय ऊपर-नीिे सिणत्र फैले हुए उसके पल्लि तथा कोपलें हैं और कमण उसके मूल हैं। यह बन्धन–िृक्ष दृढ़ िैराग्य-रूपी िस्त्र से काटा िा सकता है। उसके पश्चात् ही अधभमान, कताणपन एिं मोह से व्यत्मि की मुत्मि होती है और िह सुख-दुःख के िन्द्वों ंसे भी छूट िाता है। मनुष्य इस प्रकार अधिनािी परम पद को पा सकता है। श्रीकृष्ण कहते हैं धक यह परम पद स्वयं-प्रकाि है। उसे सूयण, िन्द्र, तारे या अधि प्रकाधित नहीं ंकरते हैं, क्ोंधक ये

सब उसके अंिमात्र से प्रकाधित हैं। िैराग्य और ज्ञान की तलिार से अपने अहंकार को काट कर ज्ञानी िन इस मत्यणलोक में पुनः कभी लौट कर नहीं ंआते।

अब श्रीकृष्ण इस मत्यणलोक में िीिािा के िन्म का िणणन करते हैं। िे कहते हैं धक परमािा का एक अंिही इस देह में िीिािा बन कर आता है, िो मन और पंित्मेन्द्रयों ंको अपनी ओर आकधषणत करता हुआ िरीर में त्मसथत रहता है। िरीर में रहते हुए िीिािा ज्ञानेत्मन्द्रयों ंिारा संसार के धिषयों ंका सेिन करता है और इस िरीर िारा अपनी अमुक िासनाओं ंकी पूधतण करने के बाद िरीर को त्याग देता है। उस समय िह मन तथा इत्मन्द्रयों ंको अपने साथ िैसे ही ले िाता है िैसे िायु फूलों ंकी सुगन्ध ग्रहण करके ले िाती है। अज्ञानी बोि के अभाि से आिा को िरीर मान लेता है और सुख-दुःख भोगता रहता है, िब धक ज्ञानी अपनी बोि-िृत्मि (धििेक) से सभी प्रिृधत्तयों ंका साक्षी मात्र बन कर रहता है। योगी िन तो भगिान् को अपने भीतर ही बैठा हुआ देखते हैं; परन्तु अज्ञानी इच्छाओं ंके ििीभूत होने के कारण प्रयि करने पर भी उन भगिान् के दिणन नहीं ंकर पाते।

भगिान् श्रीकृष्ण कहते हैं धक केिल उनके कारण ही सूयण, िन्द्र, तारा गण एिं अधि में प्रकाि है। पृथ्वी में प्रिेि करके िे अपनी ित्मि से सभी िीिों ंको िारण करते हैं तथा रस-स्वरूप िन्द्रमा बन कर सभी िनस्पधतयों ंका पोषण करते हैं। िे ही (१) भक्ष्य अथाणत् रोटी, िािल आधद ठोस आहार, (२) भोज्य अथाणत् दूि, दही आधद, (३) लेख अथाणत् मिु आधद िाटने योग्य ििि तथा (४) िोष्य अथाणत् गिे, आम आधद िैसे रस िूसने योग्य पदाथण-इन िार प्रकार के भोिनों ंको सभी िीिों ंके प्राण और अपान की संयुि ित्मि से पिाते हैं। भगिान् सबके हृदय में िास करते हैं और उनके िारा ही िीिों ंको स्मृधत तथा ज्ञान की प्रात्मप्त या अप्रात्मप्त होती है। परमािा िेदों ंिारा िाने िा सकते हैं और िे ही िेदों ंके कताण तथा ज्ञाता भी हैं। िगत् में क्षर और अक्षर-दो प्रकार के पुरुष हैं। परमािा तीनों ंलोकों ंमें प्रिेि करके सबका पोषण करते हैं। िे क्षर तथा अक्षर से परे हैं; इसधलए िेदों ंमें उन्हें 'पुरुषोत्तम' कहा गया है। श्रीकृष्ण कहते हैं धक इस प्रकार िो व्यत्मि उन्हें पुरुषोत्तम-रूप में िानता है, िह सब प्रकार से उनको ही धनरन्तर भिता है। इस प्रकार िगत् में अपनी सिणव्यापकता का िणणन कर भगिान् अिुणन तथा समस्त मानि-िाधत को यह उपदेि देते हैं धक इस गोपनीय ज्ञान को िान कर िह िीिन के परम ध्येय अथाणत् ईश्वर-साक्षात्कार को प्राप्त कर ज्ञानिान् हो िाये।

इस अध्याय में भगिान् श्रीकृष्ण बतलाते हैं धक सब नाम-रूपों ंमें, संसार के सभी िर-अिर पदाथों में िे ही समाधिष्ट हैं। उनकी ित्मि के अंिमात्र से सूयण, िन्द्र, ताराओं ंसधहत सभी ग्रह भ्रमण कर रहे हैं और प्रकाधित हैं। एकमात्र भगिान् ही िैतन्य-रूप से मानििीिन के िारीररक, मानधसक, मनोिैज्ञाधनक तथा अन्य सभी स्तरों ंपर धिरािमान हैं। भगिान् कहते हैं धक िो धनमोह-धित्त हो कर मुझे पुरुषोत्तम-रूप में िानता है, िही सिणज्ञ है एिं िही सिणभािना मुझे भिता है। िो इस गुह्याधतगुह्य ज्ञान को िानता है, िह ज्ञानिान् हो िाता है, उसके सभी सन्देहों ंतथा इस संसार के िोक-ताप का िीघ्र अन्त हो िाता है और िह कृतकृत्य हो िाता है।

इस भााँधत 'पुरुषोत्तमयोग' नामक यह पंिदि अध्याय यहााँ समाप्त होता है।

ििषो अध्याय

दैीासुरसम्पधिभागयोग

मनुष्य सद् और असद् का धमश्रण है। िह बुत्मद्ध के सम्यक् उपयोग से धदव्य बन सकता है। ज्ञानी िन अपनी दैी प्रकृधत के कारण भगिान् को पुरुषोत्तम-रूप में िान कर पूणण हृदय से उनको भिते हैं। अज्ञानी िन िासनाओं ंके कारण आसुरी स्वभाि के होते हैं। िे सांसाररक धिषयों ंमें सुख की खोि करते हैं और उनमें धिरािमान भगिान् की उपत्मसथधत अनुभि करना भूल िाते हैं। भगिान् श्रीकृष्ण मानि-िाधत को उसके िीिनोद्देश्य की प्रात्मप्त के सम्यक् मागण का धदग्दिणन करने तथा सत् और असत् में धििेक करने की धिक्षा देने के धलए दैी और आसुरी प्रकृधत का िणणन करते हैं।

भगिान् कहते हैं धक मुमुक्षु में अभय, अन्तःकरण की िुद्धता, तत्त्वज्ञान के धलए ध्यानयोग में मन की धनरन्तर दृढ़ त्मसथधत, सात्मत्त्वक दान, दम, यज्ञ, स्वाध्याय, सरलता, अधहंसा, सत्य, उत्तेिना में भी अक्रोि, त्याग, िात्मन्त, अधपिुनता, समस्त प्राधणयों ंके प्रधत दया, अलोलुपता, कोमलता, लिा, अचपलता, तेि, क्षमा, िैयण, पधित्रता, िौह, अनधभमानता आधद धदव्य गुण होते हैं।

आसुरी प्रकृधत में िन्म लेने िाले पुरुष दम्भ, अहंकार, अधभमान, क्रोि, कठोरता और अज्ञान िैसी आसुरी सम्पद् को प्राप्त होते हैं।

दैी गुणों ंके िारण से मनुष्य संसार-बन्धन से आत्यत्मन्तक मुत्मि को प्राप्त कर परम आनन्द का लाभ लेता है। आसुरी गुणों ंके आश्रय से मनुष्य बन्धन तथा कि में पड़ता है।

भगिान् श्रीकृष्ण मनुष्य की आसुरी प्रकृधत के गुणों ंका और आगे िणणन करते हैं। आसुरी प्रकृधत िाले अज्ञानी मनुष्यों ंमें िमाणिमण का ज्ञान नहीं ंहोता। उनमें िौि नहीं ंहोता, िाचार नहीं ंहोता और न सत्य ही होता है। िे ऐसा मानते हैं धक यह िगत् धमथ्या, आश्रय-रधहत, स्विं तथा व्यिसथापक ईश्वर से हीन है तथा कामनासि पुरुष और स्त्री के संयोग से उत्पि हुआ है। इन धमथ्या धिचारों ंका आश्रय ले कर धिकृत स्वभाि िाले अल्पज्ञ कूरूरकमी मनुष्य मानि-िाधत तथा समस्त िगत् के धलए धिनाकारी बनते हैं। ऐसे व्यत्मि नाम, यि और अधिकार की दुष्पूरणीय कामना से युि हो कर दम्भ, अधभमान और मद से मत्त अज्ञानिि अिुभ धसद्धान्तों ंको ग्रहण कर िेद-

धिरुद्ध कमण में प्रिृत्त होते हैं। िे कामनाओं ंकी पूधतण के धलए धिलासपूणण सिानों ंके संग्रह तथा धिषय-भोगों ंकी पूधतण के धलए अन्यायपूणण उपायों ंसे िनसंयि कर काम तथा क्रोि के दास बन िाते हैं और यह मानते हैं धक यही उनका
िीिन-सिणस्व है। िे अपने-आपसे कहते हैं- 'आि मुझे यह प्राप्त हुआ। इतना िन मेरे पास हो गया। अब भधिष्य में और भी िन प्राप्त करूाँगा। मैंने अनेक को हराया है और अब तक धिनको मैं अपने िि में नहीं ंकर पाया हाँ उन्ें भी िि में कर लूाँगा' आधद-आधद। अनेक प्रकार की कल्पनाओं ंसे भ्रधमत धित्त िाले, मायािाल में फंसे हुए धिषय-भोगों ंमें आसि अज्ञानी िन घोर नरक में धगरते हैं। िन और मान के मद से यिु और दम्भ से भरे हुए ये नाम और कीधतण के धलए िास्त्र-धिधि के धिपरीत कमण करते हैं। अहंकार, बल, दपण, कामना और क्रोि के कारण ये दूसरों ंकी धनन्दा करने िाले लोग अपने तथा दूसरों ंके िरीर में त्मसथत भगिान् से िेष करते हैं। भगिान् कहते हैं धक मेरे अटल धनयम ऐसे पापािारी नरािमों ंको िन्म-मरण के िक्र िारा आसुरी योधनयों ंमें िाल देते हैं। िे मूढ़ पुरुष िन्म–िन्म आसुरी योधनयों ंको प्राप्त हुए ईश्वर-प्रात्मप्त न कर पिु आधद से भी अधिक नीि योधनयों ंमें िन्म लेते हैं।
भगिान् कहते हैं-"यह सब िान कर मनुष्य को नरक की प्रात्मप्त में हेतुभूत काम, क्रोि एिं लोभ को त्याग देना िाधहए और िास्त्र को प्रमाण मान कर ऋधषयों ंएिं सन्तों ंिारा बताये हुए मागण पर धनिापूिणक आिरण करना िाधहए। इससे व्यत्मि को परम गधत प्राप्त होती है। परन्तु िो व्यत्मि िास्त्र-धिधि त्याग कर स्वेच्छािारी हो कायण करता है, िह न तो धसत्मद्ध को, न परम गधत को और न सुख को ही प्राप्त होता है। अतः कतणव्य और अकतणव्य के धनरूपण में एक िास्त्र ही तुम्हारा प्रमाण है, ऐसा िान कर तू िास्त्रधिधानोि कमण ही करने योग्य है।"

इस अध्याय में बताया गया है धक सब लोगों ंको आि-धिश्लेषण कर अपने िररत्र में भरे हुए अिांछनीय गुणों ंको खोि कर धििेक और अन्तरािलोकन िारा उनको तत्काल दूर करना िाधहए। ऐसा करने के धलए हमें अपने प्रधत पूणणतः प्रामाधणक रह कर मन के कायण-कलापों ंका साक्षी बनना होगा। इस त्मसथधत में ही व्यत्मि को यह पता िल सकेगा धक अमुक धििार अथिा कमण उसके धलए कल्याणप्रद है अथिा नहीं।ं इस अध्याय में बतायी गयी दैिी और आसुरी सम्पधत्तयााँ सामान्य अथण में भली या बुरी नहीं ंहै। इनमें नैधतक दृधिकोण के गुणों–अिगुणों ंसे कहीं ं अधिक गम्भीर तात्मत्त्वक अथण समाधिि है। यहााँ इस िीिन के धसद्धान्त की तत्त्वज्ञान से तुलना कर सदा के धलए उसका धनणणय कर धदया है। िगत् परमािा का िरीर है। इस पूणण धिश्व-सत्ता में दैिासुर संग्राम नहीं ंहो सकता। इस संघषण को िीत कर िुद्ध सत्त्व का धिश्वाि-भाि कायणिील होता है।

इस प्रकार 'दैिासुरसम्पधिभागयोग' नामक यह सोलहिााँ अध्याय समाप्त होता है।

सप्तदि अध्याय

श्रद्धात्रयधिभागयोग

ास्त्रि को ही प्रमाण मान कर िलने तथा ास्त्रिो व्यिसथा से धनयत कमण करने की भगिान् श्रीकृष्ण की अनुज्ञा सुन कर अिुणन ने पूछा धक िो व्यत्मि ास्त्रिो धिधि पररत्याग कर श्रद्धापूिणक दिेधदकों ंका पूिन करते हैं, उनकी क्ा दिा होती है? इस पर भगिान् श्रद्धा के तीन धिभाग कर कहते हैं धक ईश्वर के प्रधत श्रद्धा ही मनुष्य का स्वरूप धनिाणररत करती है। सात्मत्त्वक, रािधसक और तामधसक- ये तीनों ंही प्रकार के लोग भगिान् को पूिते हैं; परन्तु उसका फल तो उनकी श्रद्धा के अनुसार ही धमलता है। सात्मत्त्वक मनुष्य दिेिों ंकी, रािधसक मनुष्य यक्ष और राक्षसों ंकी तथा तामधसक िन भूत-प्रेतों ंकी पूिा करते हैं। भगिान् श्रीकृष्ण कहते हैं धक िो लोग काम, लोभ तथा क्रोि का पररत्याग धकये धबना, तप के नाम पर ास्त्रधिधि-रधहत उग्र तपस्या कर िरीर को कि देते हैं, उनकी श्रद्धा रािधसक है। अधििेकी होने के कारण िे िरीर-त्मसथत भूत-समूह को और हृदय में धनिास करने िाले मुझ अन्तयाणमी को भी कि करते हैं। ऐसे लोगों ंको आसुरी स्वभाि िाले समझना िाधहए।

कमण भी तीन प्रकार के होते हैं सात्मत्त्वक, रािधसक और तामधसक। इसी प्रकार सबके धप्रय आहार-सधहत यज्ञ, दान और तप के भी तीन भेद धकये गये हैं। िो आहार आयु, सत्त्व, बल, आरोग्य, सुख और आनत्मन्दिणक, सरस, धस्नग्ध, पौधिक और मन को धप्रय हो, िह सात्मत्त्वक आहार कहलाता है। दु:ख, िोक और रोग उत्पि करने िाला, किुआ, खट्टा, नमकीन, अधत-गरम, तीखा, सूखा और प्रदाहकारक आहार रािधसक लोगों ंको धप्रय होता है। दूधषत, स्वाद-रधहत, दुगणन्धयुि, बासी और अिुद्ध आहार तामधसक लोगों ंको अच्छा लगता है। िरीर का संििणन आहार पर ही धनभणर है। अतः आहार के गुण का ध्यान रखना आिश्यक है।

फल की आिा न रखते हुए ास्त्रिो धिधि से धकया गया यज्ञ सात्मत्त्वक यज्ञ है, फल की कामना से तथा दम्भािरण के धलए धकया गया यज्ञ रािधसक कहलाता है और ास्त्रिो धिधि का अनादर करते हुए धबना अिदान एिं दधक्षणा धदये धबना केिल नाम और यि के धलए धकया गया यज्ञ तामधसक कहलाता है।

तप भी तीन प्रकार के होते हैं: िारीररक, िाधिक और मानधसक। देिता, िेदज्ञ, ब्राह्मण, गुरु तथा ज्ञाधनयों ं का पूिन, िौि, सरलता, ब्रह्मियण, अधहंसा आधद िारीररक तप हैं। अनुिेगकारी, सत्य, धप्रय तथा धहतकारक सम्भाषण, स्वाध्याय, प्रभु के धदव्य नाम का िपाधद िाणी-सम्बन्धी तप हैं। मन की प्रसिता, सौम्यता, मौन भाि, मनोधनग्रह, भाि-संिुद्धि आधद मानधसक तप हैं। ये तीनों ंप्रकार के तप सात्मत्त्वक तप की श्रेणी में आते हैं। सत्कार, मान, पूिा के धलए अनुधित दिोरपूणण तप रािधसक तप कहा गया है। यह अत्मसथर एिं क्षधणक फल िाला है। िो तप अधििेकपूिणक धनि-िरीर को पीड़ा दे कर अथिा दूसरे प्राधणयों ंके धिनािाथण धकया िाता है, िह तामधसक है।

दान को कतणव्य-बोि से, प्रत्युपकार की आिा न रखते हुए देि, काल तथा पात्र की उत्तमता के धििारपूिणक धदया गया दान सात्मत्त्वक दान है। प्रत्युपकार की भािना से अथिा भधिष्य में लाभ की आिा से दु:खी धित्त से धदया गया दान रािधसक दान है। अनुपयुि देि, अयोग्य काल में अपात्र को सत्कार-रधहत, अिज्ञापूिणक धदया गया दान तामधसक दान कहा गया है। ईश्वर को सधिकट समझते हुए अपने दोषों ंको दूर करने के उद्देश्य से एिं सात्मत्त्वक भािना से यज्ञ, तप तथा दान करने के धलए श्रीकृष्ण अिुणन को उपदेि देते हैं धक ये सभी कायण ब्रह्म के नाम- **'ॐ तत्सत्'** -के उच्चारण के साथ सम्पि करने िाधहए। **'ॐ'** भगिान् का प्रतीक तथा िेदों ंका सार है। संसार की सभी िस्तुएँ भगिान् की हैं, ऐसी अनुभूधत **'तत्'** से होती है। इससे अहंकार तथा ममता का नाि होता है। 'मैं-पन' और 'मेरा-पन' नहीं ंरह िाता। **'सत्'** भगिान् के िाश्वत तथा श्रेष्ठ भाि का प्रधतधनधित्व करता है और स्वाथी प्रिृधत्तयों ंका दमन करके मनुष्य को ईश्वर-साक्षात्कार के योग्य बनाता है।

श्रीकृष्ण अिुणन से कहते हैं धक अश्रद्धापूिणक अनुधित यज्ञ, तप और दान 'असत्' अथाणत् धमथ्या है और इस लोक या परलोक में फलप्रद नहीं ंहोता।

इस अध्याय से मनुष्य को यह धिक्षा धमलती है धक सभी (ाारीररक तथा मानधसक) कमण ाधिक और श्रद्धापूिणक सम्पि करने पर श्रेयदायक होते हैं।

इस प्रकार 'श्रद्धात्रयधिभागयोग' नामक यह सप्तदि अध्याय समाप्त होता है।

अिादि अध्याय

मोक्षसंन्यासयोग

भगिान् श्रीकृष्ण का उपदेि िीिन के सिाांगीण धिकास की कला का मागण प्रस्तुत करता है। मानि-िीिन के धिकास की प्रत्येक अिस्था और प्रत्येक प्रक्रम में हम कैसे रहें, कैसा व्यिहार करें और धकस प्रकार धिचार करें-इन सबका भगिद्गीता सम्पूणण रूप से मागण-दिणक है। भगिान् श्रीकृष्ण ने अिुणन को पालनीय आचार संधहता सधहत कमणयोग, सांख्ययोग, भत्तियोग और ज्ञानयोग की धिक्षा दी। व्यािहाररक ज्ञान की इसी सम्पूणणता ने गीता को एक अमर ग्रन्थ बना धदया है। अब तक धदये गये सारे उपदेिों के सार का समुच्चय करने के धिचार से अिुणन ने संन्यास और त्याग के यथाथण स्वरूप को िानने की इच्छा प्रकट की।

भगिान् श्रीकृष्ण कहते हैं धक ज्ञाधनयों के मतानुसार काम्य कमों का त्याग 'संन्यास' है और समस्त कमों के फल का त्याग 'त्याग' है। कई धिद्वान् ऐसा भी कहते हैं धक कमण मात्र का त्याग कर देना चाधहए, िब धक कुछ अन्य मनीधषयों का कथन है धक यज्ञ, दान और तप कमण का त्याग नहीं करना चाधहए। भगिान् श्रीकृष्ण अपना मत प्रकट करते हैं धक व्यत्ति को यज्ञ, दान और तप िैसे कतणव्य कमों को नहीं छोड़ना चाधहए, परन्तु उनके फल का सिणथा त्याग करना चाधहए, क्योंधक यज्ञ, दान और तप ज्ञाधनयों को पधित्र बनाते हैं। धनयत कमों का त्याग करने िाला तामधसक और सभी कमण समान रूप से दु:खदायी हैं, ऐसा सोच कर िारीररक क्लेि के भय से स्वधमण का पालन न करने िाला राधसक कहा गया है। उसे उसके त्याग का फल नहीं धमलता। इच्छा और आसत्ति को

छोड़ कर कतणव्य-पालन की भािना से कमण करने िाला सात्मत्त्वक और बुत्मद्धमान् तथा सिणसंियि-रधहत होता है। उसे प्रधतकूल कमों से िेष और अनुकूल कमों से राग नहीं ंहोता।

ूँधक देहाधभमानी व्यत्मि सभी कमों का धनःिेष रूप से त्याग नहीं ंकर सकता, अतः कमण-फल-त्यागी को ही त्यागी कहा िाता है। िो कमण फल का त्याग नहीं ंकरते, उन्हीं ंको ही अच्छे, बुरे या धमधश्रत कमों का फल भोगना पड़ता है, त्यागी को नहीं।ं यहाँ तक भगिान् श्रीकृष्ण ने त्याग अथाणत् कमणयोग का सच्चा अथण धिस्तारपूिणक समझाया। अब िे संन्यास अथिा 'सांख्ययोग' का सांख्य दिणन के अनुसार प्रधतपादन करते हैं। िे कहते हैं धक कमण का अधिष्ठान (िरीर), कताण (अन्त करण), पृथक् पृथक् करण (इत्मन्द्रयाँ), नानाधिि िेष्टाएँ तथा दैि-ये कमण की धसत्मद्ध के पाँि कारण हैं। मनुष्य मन, बाणी अथिा िरीर से िो कमण परन्तु िो व्यत्मि अज्ञानिि अपनी असंग आत्मा को कताण-रूप देखता है, िह असंस्कृत बुत्मद्ध िाला अज्ञानी सम्यक् रूप से नहीं ंदेखता है। िो कताण-पन के अधभमान से मुि है. धिसकी बुत्मद्ध कायण में आसि नहीं ंहोती है, ऐसा व्यत्मि लोगों ंका हनन करते हुए भी हनम नहीं ंकरता है और न (इस प्रकार के) कमण से आबद्ध ही होता है। आत्मा अकताण है। पर की मधलनता के कारण अज्ञानी िन िरीर और इत्मन्द्रयों ंको ही आत्मा मानते हैं और स्वय को सब कमों का कताण मानते हैं। ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय-ये तीन िरीर, मन तथा िाणी के िारा कमण के प्रितणक हैं। धिस ज्ञान िारा सभी प्राधणयों ंमें एक अक्षर पुरुष की उपलत्मब्ध होती है, भगिान् श्रीकृष्ण उस ज्ञान का िणणन करते हैं। कमण एिं कताण सत्त्व, रि और तम-इन तीनों ं गुणों ंसे प्रेररत हुआ करते हैं। ईश्वर-साक्षात्कार के सहायक सात्मत्वक गुणों ंके धिकास के धलए व्यत्मि को ईश्वर-साक्षात्कार के प्रधतकूल प्रभािाली रिस तथा तामस गुणों ंका पररत्याग करना िाधहए।

धिस ज्ञान के िारा धभि-धभि भूत-समूह में एक सिणव्यापक एिं अव्यय सत्ता की उपलत्मब्ध होती है, िह सात्मत्त्वक ज्ञान कहा गया है। धिस ज्ञान के कारण व्यत्मि धभि-धभन्त्र िीिों ंको नानाधिि भाि से देखता है, िह राधसक ज्ञान कहलाता है। धिस ज्ञान िारा व्यत्मि धििेक-बुत्मद्ध का उपयोग न कर एक तथा आंधिक धिषय को ही सम्पूणण एिं यथाथण समझ कर रह िाता है, िह तामधसक ज्ञान कहलाता है।

िास्त्र-धिधहत तथा आसत्मि-धिहीन भाि तथा फलाकांक्षा रधहत हो कर अनुधित कमण सात्मत्त्वक कहा गया है। सकाम भाि से अनुधित कृच्छर साध्य काम्य कमण राधसक कहलाता है। िो कमण पौरुष, भािी पररणाम, हाधन, धहंसा आधद का धििार धकये धबना अधििेकपूिणक सम्पि धकया िाता है, िह कमण तामधसक कहा गया है।

अहंकारिून्य, आसत्मि-धिहीन, िैयण और उत्साह से युि एिं कायण की सफलता-असफलता से अप्रभाधित रहने िाला कताण सात्मत्वक कहलाता है। धिषयानुरागी, कमणफलाकांक्षी, लोभी, धहंसापरायण, अिुधि तथा हषण और िोकयुि कताण राधसक कहलाता है। असमाधहत, धििेकिून्य, उद्धत, अनम्र, बिक, आलसी, धिषायुि तथा दीघणसूत्री कताण तामधसक कहा गया है।

भगिान् श्रीकृष्ण गुणों ंके प्रकार-भेद से बुत्मद्ध एिं िृधत की व्याख्या करते हुए कहते हैं धक धिस बुत्मद्ध को प्रिृधत्त तथा धनिृधत्त, कायण तथा अकायण, भय और अभय एिं आत्मा-बन्धन तथा मोक्ष का भेद पररज्ञात है, ऐसी बुत्मद्ध सात्मत्त्वक है। धिस बुत्मद्ध िारा िमण तथा अिमण का, कायण तथा अकायण का असत्मन्दग्ध ज्ञान नहीं ंहोता, िह राधसक बुत्मद्ध है।

िो बुत्मद्ध अज्ञानािृत्त हो कर अिमण को िमण मानती है, िह धिपरीत ज्ञान िाली होती है और तामधसक बुत्मद्ध कहलाती है।

ाि अव्यधभिाररणी ि्ृधत योग के िारा मन, प्राण और इत्मन्द्रयों ंकी धक्रयाि–त्मि का धनरिी करती है, िह सात्मत्त्वक ि्ृधत कहलाती है। कतृणत्वाधद के अधभधनिेिपूिणक फलाकांक्षी हो कर धिस ि्ृधत के िारा मनुष्य मिण, अथण
और काम को िारण करता है, बह ि्ृधत रिाधसक है। दुबुणत्मद्ध व्यत्मि धिस ि्ृधत िारा अधत-धनिा, भय, िोक, धिषाद तथा मद नहीं छोड़ता है, िह तामधसक है।
िो सुख आरम्भ में दुःखदायी तथा पररणाम में अमृततुल्य होता है और िो आत्म-धिषधयनी बुत्मद्ध की धिमलता से उत्पि होता है, िह सात्मत्त्वक सुख है। िो सुख धिषय तथा इत्मन्द्रयों ंके संयोग से उत्पि होता है और िो प्रथम अमृतित्, धकनुतु पररणाम में धिष-तुल्य बोि होता है, िह रािधसक सुख कहलाता है। िो सुख आरम्भ में तथा पररणाम में भी बुत्मद्ध को मोह-मुग्ध करता है तथा धनिा, आलस्य और प्रमाद से उत्पि होता है, िह तामधसक कहलाता है। पृथ्वी पर या स्वगण में देिताओं ंके मध्य कोई भी प्राणी ऐसा नहीं ंहै, िो इन तीनों ंगुणों ंसे मुि हो।

मनुष्य के स्वाभिि गुणों ंके अनुसार ब्राह्मण, क्षधत्रय, िैश्य एिं िूि के कमण पृथक् पृथक् रूप से व्यित्मसथत धकये गये हैं। िम, दम, तप, िौि, क्षमा, ऋिुता, ज्ञान, धिज्ञान तथा आत्मस्तक्-ये सब ब्राह्मणों ंके स्वाभिािात कमण हैं। िौयण, तेि, िैयण, िातुयण (युद्ध-कौिल), दान, प्रभुत्व आधद क्षधत्रयों ंके स्वाभाधिक कमण हैं। कृधष, गोपालन और िाधणज्य िैश्यों ंके स्वाभिि कमण हैं। िुशूरूषा िूि का स्वाभाधिक कमण है। िब मनुष्य अपने स्विमण में धनिापूिणक तत्पर होता है तो िह परम धसत्मद्ध प्राप्त करके िीिन के िरम लक्ष्य तक पहुाँि िाता है।

प्रत्येक व्यत्मि अपनी इच्छा और धिकास-प्रक्रम के अनुसार धकसी धििेष िाताि़रण में िन्म लेता है। इसीधलए कोई िन्म से ही धनिणन तो कोई िनिान्, कोई मन्दबुत्मद्ध तो कोई बुत्मद्धमान् तथा धििान् होता है। ऐसा धििार कर मनुष्य को आि-तुि होना िाधहए तथा मान, नाम, यि तथा पद के धलए धनयत कतणव्य का त्याग नहीं ं करना िाधहए। िो इस सत्य को नहीं ंसमझता, िह अपने कतणव्य-कमण का पालन नहीं ंकरेगा। अतएि भगिान् कहते हैं धक सम्यक् रूप से अनुधित परिमण की अपेक्षा स्विमण का असम्यक् अनुिान भी श्रेि है। स्वभाि से धकये गये कमण का सम्पादन करने से मनुष्य पापभागी नहीं ंहोता। स्वाभिािात कमण दोषयुि होने पर भी उनका पररत्याग नहीं ंकरना िाधहए। िूममित अधि की भााँधत सभी कमण सामान्यतः दोषािृत होते हैं।

इस प्रकार भगिान् श्रीकृष्ण ने त्याग और संन्यास की व्याख्या कर ज्ञान-मागण का धििरण धदया। त्याग धिसका दूसरा नाम कमणयोग है, उसकी तथा धिधभि गुणों ंके साथ उसके स्वरूप की व्याख्या की तथा कमणयोग के साथ भत्मियोग का सिन्ध धदिणाया। भगिान् ने यह भी समझाया धक दैनत्मन्दन िीिन में धिकास के सभी प्रक्रमों ंमें कमणयोग का आिरण सुसाध्य है। साथ ही उन्होंने यह भी बताया धक धनिापूिणक अनुधित कमण भगिद्-साक्षात्कार-प्रदायक होता है।

भगिान् श्रीकृष्ण सांख्ययोग का िणणन करते हुए कहते हैं धक धिसकी बुत्मद्ध सब धिषयों ंसे अनासि है, धिसकी भोग की सूपृहा धिगत हो िुकी है, धिसने अपने मन को पूणण संयम में रखा है-ऐसा व्यत्मि नैष्कम्यण अिसथा को प्राप्त होता है। िह ज्ञानयोग के िरम पररणधत रूप, धक्रयाि–िून्यता (परम पूणणता) लाभ कर ब्रह्म को प्राप्त हो िाता है।

अब श्रीकृष्ण ज्ञानयोग तथा ब्रह्म के साथ एकरूपता सथाधपत करने िाले गुणों ंका िणणन करते हैं। धििुद्ध बुत्मद्ध-युि हो कर, सांख्ययोग का सम्यक् बोि प्राप्त कर, एकान्तिास, मन को संयत रख, धिषय-ज्ञान के महत्त्व की उपेक्षा कर उधित ज्ञान िारा इच्छाओं ंका अधतक्रमण कर, ध्यानयोग के धनिापूिणक धनरन्तर अभ्यास िारा अहकार को धिधित कर व्यत्मि ब्राह्मी भाि अनुभि करता है। उस परम िैतन्य में धनयधमत एिं अधिरत भाि से त्मसथत हुआ प्रसि धित्त िाला व्यत्मि न तो िोक से उिधि होता है और न धकसी प्रकार की आकांक्षा ही करता है। िह प्राधणमात्र में एक ही िैतन्य तत्त्व के दिणन कर सबके प्रधत सम भाि रखता है तथा सिणव्यापी प्रभु की परा-

भत्मि प्राप्त कर ब्रह्म में अित्मसथत होता है। इस प्रकार इने-धगने व्यत्मियों ंिारा ही अिारणीय संन्यास (ज्ञानयोग) का िणणन करते हुए भगिान् श्रीकृष्ण अिुणन को कमणयोगी बन कर स्विमण का पालन करने को प्रबोधित करते हैं।

ईश्वर पर धनभणर रहने िाला, उनके हाथों ंका सािन बन कर कायण करने िाला कमणयोगी स्विमण के पालन िारा भगिद्-कृपा प्राप्त करता है। श्रीकृष्ण अिुणन को फल की आकांक्षा-रधहत हो स्विमण का पालन करने की धिक्षा देते हैं। िह उसे कमणयोगी बन कर भगिान् के िरणागत होने को कहते हैं। श्रीकृष्ण कहते हैं- "अज्ञान के कारण यद्यधप तुम स्विमण का पालन करने से िूक सकते हो, धकन्तु प्रकृधत तुम्हें िही करने के धलए उत्प्रेररत करेगी; क्योंधक कमणहीन हो कर कोई एक घड़ी के धलए भी िीधित नहीं ंरह सकता। परमात्मा सब प्राधणयों ंके हृदय में त्मसथत रह कर अपनी िात्मि िारा उनसे कमण कराता है। एकमात्र भगिान् ही सब-कुछ करते हैं। अतः तुम परमात्मा की िरण ग्रहण कर स्विमण का पालन करो। मद्गतधित्त तथा मद्भि बनो। मेरे धलए यज्ञानुिान करो। धफर तुम मुझमें ही लीन हो िाओगे। समस्त कमों के अनुिान के पररत्यागपूिणक केिल मेरे िरणागत होओ। मैं तुम्हें सभी पापों ंसे धिमुि कर दूँगा। यह परम ज्ञान मैंने तुम्हें बताया है। अब तुम िैसा िाहो, िैसा करो।"

भगिान् धिषय का समाहार करते हुए कहते हैं धक िो मनुष्य तप-रधहत है तथा अहंकार के कारण धिसमें भगिान् के प्रधत श्रद्धा और भत्मि नहीं ंहै, उसे यह रहस्यमय ज्ञान नहीं ंबताना िाधहए। िो व्यत्मि भत्मियुि हो कर ईश्वर-भिों ंसे यह परम गुह्य ज्ञान कहेगा, िह अिश्यमेि परमात्मा को प्राप्त होगा। िो इस संिाद का अध्ययन करेगा, िह ज्ञान-यज्ञ िारा ईश्वरोपासना करने िाला कहा िायेगा। िो व्यत्मि श्रीकृष्ण और अिुणन का यह संिाद सुश्रिण करता है, िह भी िुभ लोक को प्राप्त होता है।

अन्त में श्रीकृष्ण अिुणन से पूछते हैं धक तुम्हारी सब िंकाएँ दूर हुईं या नहीं?ं अब तुम सन्देहमुि हुए या नहीं?ं अिुणन उत्तर देते हैं धक भगिद्-कृपा से अब मेरी धिगत-स्मृधत मुझे है तथा युद्ध करने का साहस प्राप्त हो गया है। मेरे समस्त संिय धतरोधहत हो गये हैं और अब मैं आपके उपदेिानुसार ही कायण करूँगा।

इस प्रकार संिय ने श्रीकृष्ण और अिुणन के बीि हुए इस संिाद को िृतराष्ट्र को सुनाया। संिय ने व्यास की कृपा से धदव्य दृधि प्राप्त की थी, धिसके पररणाम-स्वरूप उन्होंने गुह्य योग-तत्त्व का श्रिण धकया था और भगिान् के धिश्व-रूप का दिणन करके आह्लाधदत हो गये थे।

संिय आश्वासन देते हैं धक धिस पक्ष में स्वयं योगेश्वर श्रीकृष्ण तथा धिस पक्ष में िनुिाणरी अिुणन होते हैं, िहाँ श्री, धििय, धिभूधत एिं अव्यधभिाररणी नीधत धनिास करती है यह धनश्चय िानना िाधहए।

गीता के इस अध्याय के पाठ में मनुष्य को अपनी धिकासप्रक्रम, गुणों ंतथा भगिान् की श्रद्धा का बोि हो िाता है। धिस भाँधत िलपूररत सररता की धदिा में अधिराम गधत से प्रिाधहत होती रहती है, उसी भाँधत आत्म धिश्लेषण और धििेक-बुत्मद्ध िारा अपनी संश्वलेधषत पूणण सत्ता को ईश्वर की ओर गधतमान होना िाधहए। नदी की गधत समुि की गधतहीन त्मसथधत को प्राप्त करने के धलए होती है। उसी तरह हमारे सारे प्रयास प्रयिरधहत सिोच्च अिसथा को प्राप्त करने के धलए हों।ं

इस प्रकार 'मोक्षसंन्यासयोग' नामक गीता का यह अत्मन्तम अध्याय समाप्त होता है।

श्री स्वामी धिानन्द सरस्वती

८ धसतिर, १८८७ को सन्त अप्पय्य दीधक्षतार तथा अन्य अनेक ख्याधत-प्राप्त धिानों ंके सुप्रधसद्ध पररिार में िन्म लेने िाले श्री स्वामी धिानन्द िी में िेदान्त के अध्ययन एिं अभ्यास के धलए समधपणत िीन िीने की तो स्वाभाधिक एिं िन्मात प्रिृधत्त थी ही, इसके साथ-साथ सबकी सेिा करने की उत्कण्ठा तथा समस्त मानि िाधत से एकत्व की भािना उनमें सहित ही थी।

सेिा के प्रधत तीव्र रुधि ने उन्ें धिधकत्सा के क्षेत्र की ओर उन्मुख कर धदया और िहााँ उनकी सेिा की सिाणधिक आिश्यकता थी, उस ओर िीघ्र ही िे अधभमुख हो गये। मलाया ने उन्ें अपनी ओर खींि धलया। इससे पूिण िह एक स्वास्थ्य-सिन्धी पधत्रका का सम्पादन कर रहे थे, धिसमें स्वास्थ्य सिन्धी समस्याओं ंपर धिस्तृत रूप से धलखा करते थे। उन्ोंने पाया धक लोगों ंको सही िानकारी की अत्यधिक आिश्यकता है, अतः सही िानकारी देना उनका लक्ष्य ही बन गया।

यह एक दैिी धिधान एिं मानि िाधत पर भगिान् की कृपा ही थी धक देह-मन के इस धिधकत्सक ने अपनी िीधिका का त्याग करके, मानि की आत्मा के उपिारक होने के धलए त्यागमय िीन को अपना धलया। १९२४ में िह ऋधषकेि में बस गये, यहााँ कठोर तपस्या की और एक महान् योगी, सन्त, मनीषी एिं िीिन्मुक्त महात्मा के रूप में उद्भाधसत हुए।

१९३२ में स्वामी धिानन्द िी ने 'धिानन्द आश्रम' की सथापना की, १९३६ में 'द धडिाइन लाइफ सोसायटी' का िन्म हुआ; १९४८ में 'योग–िेदान्त फारेस्ट एकेडेमी' का िुभारम्भ धकया। लोगों ंको योग और

ेदान्त में प्रधिधक्षत करना तथा आध्यात्मिक ज्ञान का प्रिार-प्रसार करना इनका लक्ष्य था। १९५० में स्वामी िी ने भारत और लंका का िुत-भ्रमण धकया। १९५३ में स्वामी िी ने 'िर्ल्ण पाधलणयामेंट ऑफ ररलीन्स' (धिश्व िमण सैलन) आयोधित धकया। स्वामी िी ३०० से अधिक ग्रन्थों ंके रिधयता हैं तथा समस्त धिश्व में धिधभि िमों, ाधितयों ंऔर मतों ंके लोग उनके धिष्य हैं। स्वामी िी की कृधतयों ंका अध्ययन करना परम ज्ञान के स्रोत का पान करना है। १४ िुलाई, १९६३ को स्वामी िी महासमाधि में लीन हो गये।

A DIVINE LIFE SOCIETY PUBLICATION

HS 18 55/-